मई १९५७

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०,
डिप्टी गंज,
दिल्ली ।

परिचय

अशोक के धर्मलेखों का यह संग्रह भगवान् बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। इसमें अशोक के मूल शिलालेखों, स्तम्भलेखों तथा गुफालेखों का केवल हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अनुवाद सर्वसाधारण के लाभ के लिए यथासम्भव सरल भाषा में करने की चेष्टा की गयी है।

अशोक के धर्मलेखों के सम्बन्ध में अभी तक सब से प्रामाणिक ग्रंथ जर्मन विद्वान् श्री हुल्श कृत "इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक" माना जाता है। यह हिन्दी अनुवाद श्री हुल्श के ग्रन्थ को आधार मानकर किया गया है, पर कहीं-कहीं अनुवाद हुल्श कृत अनुवाद से भिन्न भी है। इस अनुवाद में धर्मलेखों का क्रम भी वही रखा गया है, जो हुल्श ने अपने ग्रंथ में रखा है।

श्री हुल्श कृत अशोक के धर्मलेखों का संग्रह सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर अब तक अशोक के कई नये शिलालेख प्रकाश में आये हैं, जिनकी सूची नीचे दी जाती है

१. येर्रागुडी का चतुर्दश शिलालेख
२. गुजर्रा का लघु शिलालेख
३. राजुल मन्दगिरि का लघु शिलालेख
४. येर्रागुडी का लघु शिलालेख
५. गवीमठ का लघु शिलालेख
६. पाल्कीगुण्डु का लघु शिलालेख

इन सब लेखों का भी अनुवाद करके यथास्थान इस पुस्तक में समाविष्ट कर दिया गया है।

इसी बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार के सूचना विभाग की ओर से अशोक के धर्मलेखों का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया है। अंग्रेजी अनुवादकर्ता हैं श्री डी० सी० सरकार। अंग्रेजी अनुवाद के प्रारम्भ में श्री डी. सी सरकार ने एक भूमिका भी लिखी है, जिसमें उन्होंने संक्षेप में अशोक के इतिहास तथा उनके धर्मलेखों के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें दे दी हैं। इस भूमिका

का हिन्दी अनुवाद भी हमारी इस पुस्तक के प्रारम्भ मे दे दिया गया है। इससे पाठको को अशोक तथा उनके धर्मलेखो के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी हो जायगी।

अशोक ने द्वितीय स्तम्भलेख में अपने धर्मलेख लिखवाने का उद्देश्य नीचे लिखे शब्द में प्रगट किया है

"यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करे और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार आचरण करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।"

यदि इस हिन्दी अनुवाद से अशोक के इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में कुछ भी महायता मिलेगी, तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

—जनार्दन भट्ट

विषय-सूची

मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकार्य करूँ मुझे सन्तोष नहीं होता। जो कुछ परिश्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है, उससे उऋण हो जाऊँ।

—षष्ठ शिलालेख

सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें।

—धौली और जौगढ का प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

जो सीमान्त प्रदेश में रहने वाली जातियाँ नहीं जीती गयी हैं वे मुझ से सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें।

—धौली और जौगढ का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

मेरे राज्य में सब जगह सब सम्प्रदाय के लोग एक साथ मेल-जोल से रहें।

—सप्तम शिलालेख

लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसका आदर करें। सब सम्प्रदायों में धर्म के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो।

—बारहवां शिलालेख

१-अशोक का ऐतिहासिक वर्णन

१—मगध देश

प्राचीन मगध देश विहार के दक्षिणी भाग में स्थित वर्तमान पटना और गया जिले को मिलाकर बना था। यहाँ बुद्ध के समय में बिम्बिसार नामक राजा राज्य करता था। बिम्बिसार का समय ईसा से पूर्व ५४६ से लेकर ४९४ तक माना जाता है और बुद्ध का समय एक प्राचीन लिखित प्रमाण के आधार पर ई० पू० ५६६ से लेकर ई० पू० ४८६ तक तथा एक किंवदन्ती के अनुसार ई० पू० ६२४ से ई० पू० ५४४ तक माना गया है। बिम्बिसार की राजधानी राजगृह थी, जिसको स्वयं उसने मगध राज्य की सबसे पुरानी राजधानी गिरिव्रज के निकट, उसके बाहरी भाग में, बनाया था। विहार के गया जिले में आजकल का राजगिरि प्राचीन राजगृह के स्थान पर बना हुआ है।

बुद्ध के समय में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में अनेक ऐश्वर्यशाली प्रजातन्त्र द्वारा शासित तथा राजा द्वारा शासित राज्य थे। उनमें से केवल १६ ऐसे थे जो महाजनपद या महाराज्य कहे जाते थे। मगध उनमें से एक था। परन्तु बुद्ध के निर्वाण के पूर्व ही इन १६ बड़े राज्यों में से ४ राज्य ऐसे थे, जो अपने राज्य का विस्तार करने की नीति का अनुसरण करके और पड़ोसी राज्यों को दबाकर, सर्वश्रेष्ठ हो गये थे। मगध उनमें से एक था और बाकी तीन कोसल, वत्स और अवन्ती के राज्य थे। इन तीन राज्यों की राजधानियाँ क्रम से श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश के गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर स्थित वर्तमान साहेतमाहेत ग्राम), कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास वर्तमान कोसम ग्राम) और उज्जयिनी (मध्यप्रान्त के पश्चिमी मालवा में स्थित वर्तमान उज्जैन नगरी) थीं।

मगध राज्य बढ़ते बढ़ते अन्त में एक महा साम्राज्य बन गया था, जिसमें प्राचीन भारत का अधिकतर भाग सम्मिलित था। उस साम्राज्य के बड़प्पन की नींव बिम्बिसार ही ने डाली थी। उसने पूर्वी विहार के मुंगेर और भागलपुर जिलों में स्थित अंग राज्य को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अजातशत्रु (४९४-४६२ ई० पू०) न केवल वृजि नामक

प्रजातन्त्र राज्य को, जिसकी राजधानी वैशाली (मुजफ्फरपुर जिले में वर्तमान बेसाढ) थी, जीतकर उत्तरी विहार में अपनी शक्ति का विस्तार करने में सफल हुआ था, वरन एक लम्बे युद्ध के वाद कोशल के शक्तिशाली राजा को भी दबाने में सफल हो गया था। इसी वीच अवन्ती का राजा भी अपने राज्य का विस्तार कर रहा था, जिसके फलस्वरूप वत्स राज्य को तथा कई अन्य पडोसी राज्यो को दवाकर, उसने अपने राज्य में मिला लिया था। अन्त में अब उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए मगध और अवन्ती ये दो ही राज्य ऐसे थे, जो एक दूसरे के आमने सामने डटे हुए खडे थे।

उत्तरी विहार के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करते समय अजातशत्रु ने वर्तमान पटना के निकट, गगा और सोन नदी के सगम पर, पाटलि नामक ग्राम में एक किला बना लिया था। वही उसके पुत्र और उत्तराधिकारी उदयी (४६२-४४६ ई० पू०) ने ई० पू० ४५९ के लगभग पाटलिपुत्र नगर बसाया था। मगव राज्य का अव इतना अधिक विस्तार हो गया था कि यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि राजवानी को एक ऐसे नगर में रक्खा जाय, जो साम्राज्य के केन्द्र-स्थान में स्थित हो। नवीन पाटलि नगर चूकि राजगृह से अधिक केन्द्रीय स्थान में था, इसलिए राजधानी वही परिवर्तित कर दी गयी।

ईसा पूर्व पाचवी शताब्दी के अन्तिम भाग में मगव राज्य का सिहासन शिशुनाग (४१४-३९६ ई० पू०) के हाथ में चला गया। शिशुनाग प्रारम्भ में उत्तर प्रदेश के वाराणसी (वर्तमान बनारस) मे विम्बिसार के वश के पिछले राजाओ की ओर से प्रतिनिधि-शासक के रूप में शासन करता था। मगव राज्य के विस्तार में उसका सवसे वडा काम अवन्ती को जीत कर मगध राज्य में मिलाना था। इस प्रकार उत्तरी भारत के कई विस्तृत क्षेत्र मगव राज्य के नीचे आ गये। इसके थोडे ही समय वाद नन्दवश के सस्थापक महापद्मनन्द ने शैशुनाग वश को पराजित कर एक नया साम्राज्य स्थापित किया।

महापद्मनन्द ने देश के भिन्न-भिन्न भागो में राज्य करने वाली भिन्न-भिन्न शक्तियो को दवा कर विन्ध्य पर्वत के उस पार कलिंग देश सहित एक विस्तृत क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। उसी समय मेसडन का प्रसिद्ध यूनानी राजा सिकन्दर (ई० पू० ३३६-३२३) अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त को विजय करता हुआ पजाव और सिंध में आ

पहुचा था, जो उस काल में भारत के उत्तरापथ मे सम्मिलित थे। उस समय नन्दवंश का अन्तिम राजा मगध में राज्य कर रहा था। प्राचीन यूरोपीय लेखको ने लिखा है कि नन्द राजा की राजधानी पालिम्बोथ्रा अर्थात् पाटलिपुत्र थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि नन्द राजा प्रासी (प्राची) लोगो और गगराइडे लोगो का अधिपति था। उस समय 'प्रासी' वे लोग कहलाते थे जो पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और उत्तरी बगाल मे बसे हुए थे और गगाराइडे या गगा तट वाले वे लोग थे जो दक्षिणी बगाल मे गगा के मुहाने वाले प्रात मे रहते थे। गगाराइडे प्राचीन भारतीय साहित्य में वग नाम से लिखे गये है।

२—मौर्य वंश

ई० पू० ३२५ मे भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग से सिकन्दर के प्रस्थान कर देने के तुरन्त ही बाद, मौर्यवश के सस्थापक चन्द्रगुप्त (ई० पू० ३२४-३००) ने नन्द वश के राजा को गद्दी से उतार कर अपना राज्य स्थापित किया। उत्तरी बिहार और नेपाल के लिच्छवियो तथा अन्य इसी प्रकार के दूसरे लोगो के समान मौर्य लोग भी एक हिमालयवर्ती जाति के थे। धीरे धीरे जब वे ब्राह्मणो द्वारा व्यवस्थापित समाज में लीन होने लगे, तब उन्होंने क्षत्रिय होने का दावा किया, यद्यपि कट्टर ब्राह्मण-धर्मानुयायी तब भी उनको शूद्र वर्ण से अधिक पद का भागी नही समझते थे।

चन्द्रगुप्त एक विलक्षण योग्यता वाला, राजनीति-विशारद तथा सेनापति था। वह न केवल कलिंग के सिवाय नन्द के विस्तृत साम्राज्य पर अधिकार जमाने में ही सफल हो गया था, बल्कि सिकन्दर के सेनापतियो को निकाल बाहर कर, पजाब, पश्चिमी पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमाक्षेत्र और सिन्ध को भी अपने साम्राज्य के अन्तर्गत मिलाने में सफल हुआ था। ई० पू० ३०५ में चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के एक सेनापति सेल्यूकस नाईकेटार के आक्रमण को विफल करके ई० पू० ३२३ में सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद ही, पश्चिमी एशिया का एकच्छत्र अधिपति बन गया। सेल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ

कर दिया और अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान का बहुत सा भाग भी उसको दे दिया।

चन्द्रगुप्त के दरबार में मेगास्थनीज़ नामक सेल्यूकस का जो राजदूत रहता था उसने तत्कालीन भारत का बहुत अच्छा वर्णन लिखा है। परन्तु उसकी पुस्तक के केवल कुछ ही अश शेष रहे हैं, बाकी नष्ट हो गये हैं। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ के अनुसार मौर्य साम्राज्य के शासन का सूत्र एक अत्यन्त केन्द्र-नियन्त्रित अधिकारी-वर्ग या नौकरशाही के हाथ में था। राजा का निरकुश शासन था और राजा का अधिकार ही सर्वोपरि था। राजा का सर्वाधिकार एक बहुत बडी सेना के बल पर आधारित था, जिसमें ६ लाख पैदल, ३०,००० घुड-सवार, ३६,००० महावतो द्वारा चालित युद्ध के ९,००० हाथी तथा अनेक सहस्र रथ थे। चन्द्रगुप्त का साम्राज्य सभवत उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक और पूर्व में बगाल से लेकर पश्चिम मे अरब सागर और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। सन् १५० ईस्वी के एक शिलालेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त का एक गवर्नर या प्रान्तीय शासक काठियावाड में नियुक्त था। जैन कथानक के अनुसार चन्द्रगुप्त मैसूर में श्रवण बेलगोला नामक स्थान में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार (ई० पू० ३००-२७२) गद्दी पर बैठा। यूनानियो ने उसका उल्लेख अमित्रोकेटस अथवा अमित्रघात नाम से किया है। वह अपने पिता से प्राप्त विस्तृत साम्राज्य को सुरक्षित रखने और पश्चिमी एशिया के यूनानी राजा तथा उसके पडोसियो के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखने में सफल रहा।

३—अशोक (२७२-२३२ ई० पू०)

बिन्दुसार का परलोकवास ई० पू० २७२ के लगभग हुआ और उसके बाद उसका विख्यात पुत्र अशोक राजगद्दी पर बैठा। परन्तु उसका राज्याभिषेक चार वर्ष बाद मनाया गया। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवत उसको इस बीच एक लम्बे समय तक राज्याधिकार के लिए कलह करना पडा। कुछ

दन्तकथाओं के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने सम्भवत २६९ ई० पू० के लगभग अपने राज्याभिषेक की तिथि से लेकर ३७ वर्ष तक राज्य किया। अशोक का साम्राज्य उसके पिता तथा पितामह के साम्राज्य से भी बड़ा और विस्तृत था, क्योंकि उसने आन्ध्र और उड़ीसा के तट वाले क्षेत्र में स्थित कलिंग को भी मौर्य साम्राज्य में मिला लिया था। ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी में ह्वेनसाग नामक चीनी बौद्ध यात्री ने एक दन्त-कथा के आधार पर लिखा है कि मद्रास के पास कांचीपुरम् अशोक-साम्राज्य का एक भाग था।

अशोक की जीवनी और उसके पराक्रम के बारे में विस्तृत सामग्री साहित्यिक दन्तकथाओं से तथा शिलाओं और स्तम्भों पर खुदे हुए अशोक के धर्मलेखों से प्राप्त होती है।

गुजर्रा का लघु शिलालेख तथा मास्की का लघु शिलालेख केवल ये दो अशोक के धर्मलेख ऐसे हैं, जिन में अशोक का नाम पाया जाता है। अशोक के अन्य धर्मलेखों में उसका उल्लेख केवल "देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा" (अर्थात् देवताओं के प्यारे और सबों पर कृपादृष्टि रखने वाले) इन शब्दों में हुआ है। कभी कभी उसका उल्लेख केवल "देवाना प्रिय" या "राजा प्रियदर्शी" इस नाम से भी किया गया है। साहित्यिक दन्तकथाओं में प्राय अशोक का उल्लेख प्रियदर्शी या प्रियदर्शन (प्रिय है दर्शन जिसका) इस नाम से भी हुआ है। परन्तु कुछ दूसरे प्राचीन राजा और अशोक के परिवार के कुछ सदस्य भी "देवाना प्रिय" और "प्रियदर्शन" नाम से कहे गये हैं। अशोक ने "प्रियदर्शी" नाम बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के बाद दया और निष्पक्षता की नीति का अनुसरण करने के कारण ग्रहण किया या अन्य किसी कारण से, यह ज्ञात नहीं है। दन्तकथाओं में कहा गया है कि अशोक का पूरा नाम अशोकवर्धन था।

अशोक के धर्मलेखों में अशोक को एक स्थान पर मगध का राजा कहा गया है, जो मौर्य सम्राटों का निवास स्थान तथा केन्द्रीय प्रांत था। कुछ स्थलों पर पाटलिपुत्र का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से उनकी राजधानी के रूप में किया गया है। परन्तु धर्मलेखों में जहाँ जगह "वहाँ" शब्द आया है, उसका अर्थ राजपरिवार या राजधानी या अशोक का समस्त राज्य लेना चाहिये। कुछ स्थानों पर साम्राज्य का उल्लेख पृथ्वी या जम्बूद्वीप के रूप में किया गया है जिसका अर्थ प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार भूमण्डल या भूमण्डल का वह भाग है जिसमें

कर दिया और अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान का बहुत सा भाग भी उसको दे दिया।

चन्द्रगुप्त के दरबार में मेगास्थनीज नामक सेल्यूकस का जो राजदूत रहता था उसने तत्कालीन भारत का बहुत अच्छा वर्णन लिखा है। परन्तु उसकी पुस्तक के केवल कुछ ही अश शेष रहे हैं, बाकी नष्ट हो गये हैं। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज के अनुसार मौर्य साम्राज्य के शासन का सूत्र एक अत्यन्त केन्द्र-नियन्त्रित अधिकारी-वर्ग या नौकरशाही के हाथ में था। राजा का निरकुश शासन था और राजा का अधिकार ही सर्वोपरि था। राजा का सर्वाधिकार एक बहुत बडी सेना के बल पर आधारित था, जिसमें ६ लाख पैदल, ३०,००० घुड-सवार, ३६,००० महावतो द्वारा चालित युद्ध के ९,००० हाथी तथा अनेक सहस्र रथ थे। चन्द्रगुप्त का साम्राज्य सभवत उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक और पूर्व में बगाल से लेकर पश्चिम में अरब सागर और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। सन् १५० ईस्वी के एक शिलालेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त का एक गवर्नर या प्रान्तीय शासक काठियावाड में नियुक्त था। जैन कथानक के अनुसार चन्द्रगुप्त मैसूर में श्रवण बेलगोला नामक स्थान में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार (ई० पू० ३००-२७२) गद्दी पर बैठा। यूनानियो ने उसका उल्लेख अमित्रोकेटस अथवा अमित्रघात नाम से किया है। वह अपने पिता से प्राप्त विस्तृत साम्राज्य को सुरक्षित रखने और पश्चिमी एशिया के यूनानी राजा तथा उसके पडोसियो के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखने में सफल रहा।

३—अशोक (२७२-२३२ ई० पू०)

बिन्दुसार का परलोकवास ई० पू० २७२ के लगभग हुआ और उसके बाद उसका विख्यात पुत्र अशोक राजगद्दी पर बैठा। परन्तु उसका राज्याभिषेक चार वर्ष बाद मनाया गया। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवत उसको इस बीच एक लम्बे समय तक राज्याधिकार के लिए कलह करना पडा। कुछ

दन्तकथाओ के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने सम्भवत २६९ ई० पू० के लगभग अपने राज्याभिषेक की तिथि से लेकर ३७ वर्ष तक राज्य किया। अशोक का साम्राज्य उनके पिता तथा पितामह के साम्राज्य से भी बडा और विस्तृत था, क्योकि उसने आध्र और उडीसा के तट वाले क्षेत्र मे स्थित कलिंग को भी मौर्य साम्राज्य मे मिला लिया था। ईस्वी सन् की सातवी शताब्दी में ह्वेनसाग नामक चीनी बौद्ध यात्री ने एक दन्त-कथा के आधार पर लिखा है कि मद्रास के पास काचीपुरम् अशोक-साम्राज्य का एक भाग था।

अशोक की जीवनी और उसके पराक्रम के बारे में विस्तृत सामग्री साहित्यिक दन्तकथाओ मे तथा शिलाओ और स्तम्भो पर खुदे हुए अशोक के धर्मलेखो मे प्राप्त होती है।

गुजर्रा का लघु शिलालेख तथा मास्की का लघु शिलालेख केवल ये दो अशोक के धर्मलेख ऐसे है, जिन मे अशोक का नाम पाया जाता है। अशोक के अन्य धर्मलेखो मे उनका उल्लेख केवल "देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा" (अर्थात् देवताओ के प्यारे और सबो पर कृपादृष्टि रखने वाले) इन शब्दो में हुआ है। कभी कभी उनका उल्लेख केवल "देवाना प्रिय" या "राजा प्रियदर्शी" इन नाम से भी किया गया है। साहित्यिक दन्तकथाओ में प्राय अशोक का उल्लेख प्रियदर्शी या प्रियदर्शन (प्रिय है दर्शन जिसका) इन नाम से भी हुआ है। परन्तु कुछ दूसरे प्राचीन राजा और अशोक के परिवार के कुछ सदस्य भी "देवाना प्रिय" और "प्रियदर्शन" नाम से कहे गये है। अशोक ने "प्रियदर्शी" नाम बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के बाद दया और निष्पक्षता की नीति का अनुसरण करने के कारण ग्रहण किया या अन्य किसी कारण से, यह ज्ञात नहीं है। दन्तकथाओ मे कहा गया है कि अशोक का पूरा नाम अशोकवर्धन था।

अशोक के धर्मलेखो मे अशोक को एक स्थान पर मगध का राजा कहा गया है, जो मौर्य सम्राटो का निवास स्थान तथा केन्द्रीय प्रात था। कुछ स्थलो पर पाटलिपुत्र का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से उनकी राजधानी के रूप में किया गया है। परन्तु धर्मलेखो में जहॉ जगह "यहॉ" शब्द आया है, उनका अर्थ राजपरिवार या राजधानी या अशोक का समस्त राज्य लेना चाहिये। कुछ स्थानो पर साम्राज्य का उल्लेख पृथ्वी या जम्बुद्वीप के रूप मे किया गया है, जिसका अर्थ प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार भूमण्डल या भूमण्डल का वह भाग है जिसमें

भारतवर्ष स्थित है।

धर्मलेखो में जिन नगरो का उल्लेख आया है वे ये हैं—उज्जयिनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरि, तोसली, कौशाम्बी, समापा तथा इसिला। इनमें से प्रथम चार प्रातीय राजधानिया थी, जहाँ राजघराने के राजकुमार प्रतिनिधि-शासक के रूप में नियुक्त किये जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पाटलिपुत्र नगर प्राचीन भारतवर्ष के प्राच्य भाग और मध्यदेश भाग का केन्द्र-स्थान था। प्राच्यदेश और मध्यदेश में उस समय आजकल के पूर्वी पजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बगाल शामिल थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उज्जयिनी, तक्षशिला (जो पश्चिमी पजाब के रावलपिंडी जिले में है) और सुवर्णगिरि (जो आन्ध्र में कुर्नूल जिले के एर्रागडी नामक स्थान के निकट है) क्रम से पश्चिमी भारत में अपरान्त या पश्चाद्देश की, उत्तर-पश्चिम में उत्तरापथ की और दक्षिण में दक्षिणापथ की राजधानी थी। तोसली उडीसा के पुरी जिले मे भुवनेश्वर के पास वर्तमान धौली के स्थान पर थी। वह कलिंग देश की राजधानी थी, जिसे अशोक ने अपने शासन के नवें वर्ष में विजय किया था। समापा उडीसा के गजाम जिले में जौगढ पहाडी के निकट एक प्राचीन नगर था और इसिला मैसूर के चीतलद्रुग जिले में वर्तमान सिद्धपुर के स्थान पर बसा हुआ था। सन् १५० ई० के जूनागढ शिलालेख के अनुसार काठियावाड में अशोक का प्रातीय शासक एक यवन या यूनानी राजकुमार तुषाप्प नाम का था, जो कदाचित् उज्जयिनी के राजप्रतिनिधि राजकुमार के नीचे था। दन्तकथा के अनुसार अशोक स्वय उज्जयिनी तथा तक्षशिला दोनो स्थानो पर अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर चुका था। अशोक के धर्मलेखो में कई बौद्ध तीर्थ-स्थानो का भी उल्लेख मिलता है, जहाँ सम्राट् अशोक तीर्थ-यात्रा करते हुए गये थे। ऐसे तीर्थ-स्थानों में नेपाल की तराई में लुम्बिनी ग्राम और बिहार के गया जिले में सम्बोधि या महाबोधि भी थे।

अशोक के साम्राज्य में जिन जिन जातियो के लोग रहते थे उनमें यवन, काम्बोज, भोज, राष्ट्रिक, पैत्र्यणिक, आन्ध्र, पौलिन्द (पुलिन्द), नाभक और नामपंक्ति का उल्लेख धर्मलेखो में मिलता है। इनमें से यवन या यूनानी और काम्बोज लोग प्राचीन उत्तरापथ के विस्तृत क्षेत्र के उन भागो में रहते थे, जो आजकल अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोज, राष्ट्रिक, आन्ध्र और पुलिन्द लोग विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में भारतवर्ष के दक्षिणापथ प्रदेश में रहते थे।

अशोक के धर्मलेखो में कही कही ऐसे लोगो और ऐसे देशो का भी उल्लेख है, जो उसके साम्राज्य के बाहर थे। एक स्थान पर उनका उल्लेख "अपराजित" (अर्थात् न जीते हुए) के रूप मे किया गया है। अशोक के साम्राज्य के बाहर वाले कुछ देशो का उल्लेख विशेष रूप से धर्मलेखो मे है। दक्षिण मे ऐसा एक देश चोड या चोल लोगो का था, जो मद्रास राज्य के दक्षिणी भाग में तजवूर-तिरुचिरप्पल्ली में था तथा ऐसा एक दूसरा देश पाण्ड्य लोगो का था, जो मद्रास राज्य के दक्षिणी भाग में मदूरे-रामन्यपुरम्-तिरुनेल्वेली के क्षेत्रमें था। अशोक के धर्मलेख मे केरलपुत्र और सत्यपुत्र नामक स्वतन्त्र राज्यो का भी उल्लेख आया है, जो दक्षिणी भारत के पश्चिमी तट पर मलयालम् भाषा-भाषी क्षेत्र मे स्थित थे। भारतवर्ष के दक्षिण में ताम्रपर्णी या श्रीलका का भी उल्लेख धर्मलेख में हुआ है। अशोक के साम्राज्य के पश्चिम मे यूनानी राजा अन्तियोक अर्थात् पश्चिमी एशिया का राजा ऐन्टीओकस-थिअस (२६१-२४६ ई० पू०) और उस अन्तियोक के चार पडोसी राजा तुरमाय या तुलमाय अर्थात् मिश्र का राजा टालेमी फिलडेल्फस (२८५-२४७ ई० पू०), अन्तेकिन या अन्तिकिनि अर्थात् मैसिडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोनेटस (२७७-२३९ ई० पू०), मका या मगा अर्थात् उत्तरी अफ्रीका में साइरीनी का राजा मगस (२८२-२५८ ई० पू०) और अलिकसुन्दर अर्थात् एपाइरस का राजा एलेक्जेंडर (२७८-२५५ ई० पू०) अथवा कारिन्थ का राजा एलेक्जेण्डर (२५२-२४४ ई० पू०) का भी उल्लेख स्वतन्त्र राजाओ के रूप में हुआ है।

अशोक ने अपने धर्मलेख में कुछ ऊचे राज्याधिकारियो या अफसरो का उल्लेख भी किया है, जो "महामात्र" कहलाते थे। वे भिन्न भिन्न अधिकारो या कार्यो पर नियुक्त थे—यथा कुछ महामात्र किसी नगर के न्याय-विभाग का कार्य देखते थे, कुछ महामात्र राजपरिवार की स्त्रियो के सम्बन्ध में आवश्यक बातो की देखभाल करते थे तथा कुछ महामात्र साम्राज्य के सीमावर्ती प्रातो का प्रबन्ध करते थे। अशोक ने एक धर्म-सम्बन्धी विभाग भी स्थापित किया था जो धर्ममहामात्र नामक अधिकारियो के अधीन रखा गया था। राजदूत भी सम्भवत इन्ही महामात्रो में से नियुक्त किये जाते थे। अन्य दूसरे उच्च अधिकारी, जिनका उल्लेख अशोक के धर्मलेखो में आया है, "प्रादेशिक", "रज्जुक" और "युक्त" नाम के थे, जो यथा-क्रम से जिलो के समूह में, एक एक जिले में तथा जिले के एक एक भाग में अधिकारी या हाकिम नियुक्त थे। इसी प्रकार जिले के एक एक भाग में एक

और अफसर भी थे जो "राष्ट्रिक" कहलाते थे। एक प्रकार के ऊचे अफसर और भी थे, जो केवल "पुरुष" नाम से कहे गये है। वे कदाचित् अशोक के विशेष एजेन्ट या कारिन्दा के रूप में थे। अशोक के छोटे अफसरो में "प्रतिवेदको" या "गुप्तचरो" का तथा "लिपिकरो" या लेखको का भी उल्लेख आया है। पशुओ तथा चरागाहो की देखभाल करने वाले अधिकारी कदाचित् ऊचे अफसरो मे गिने जाते थे।

४–अशोक का धर्म

अशोक के धर्मलेखो का प्रधान विषय "धर्म" है। लघु शिलालेख में "धर्म" शब्द बुद्ध के उपदेशो के अर्थ में आया है। परन्तु अन्य लेखो में धर्म का अभिप्राय उस नीतिशिक्षा से है, जिसका प्रचार अशोक ने बुद्ध भगवान् के उपदेशो का सार समझ कर किया था। बुद्ध ने एक गृहस्थ के शृगाल नामक पुत्र को जो उपदेश दिया था और जो दीर्घ निकाय नामक बौद्धधर्म-सम्बन्धी ग्रथ में पाया जाता है, उसमें और अशोक की शिक्षा में कुछ समानता अवश्य है।

बौद्ध दन्तकथाओ में अशोक का उल्लेख बौद्ध धर्म ग्रहण करने वाले एक उपासक के रूप में तथा बौद्ध धर्म के सरक्षक के रूप में आया है। ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने पाटलिपुत्र मे अशोकाराम तथा साम्राज्य के भिन्न भिन्न नगरो में कुल मिलाकर कम से कम ८४००० बौद्ध विहार बनवाये थे। अशोक के धर्मलेखो से इस बात की पूरी पुष्टि होती है कि उसने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था।

कई स्थानो पर अशोक ने बुद्ध को "भगवान्" कह कर उल्लेख किया है और एक स्थान पर बुद्ध की शिक्षा को "सद्धर्म" के रूप में वर्णन किया है। लघु शिलालेख में उसने कहा है कि "अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मै उपासक हुआ। पर एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मैं सघ मे आया हूँ, तबसे मैंने खूब उद्योग किया है।" एक लघु शिलालेख से पता चलता है कि बौद्ध धर्म के त्रिरत्न अर्थात् बुद्ध, धर्म और सघ में उसकी भक्ति और श्रद्धा थी। उसने उक्त शिलालेख में कुछ धर्मग्रथों के नामो का भी उल्लेख किया है, जिनको उसने स्वय चुना था और बौद्ध भिक्षु, भिक्षुणी तथा गृहस्थ उपासको द्वारा अवश्य पढने योग्य समझा था। एक लघु

स्तम्भलेख में उसने अपने अधिकारियो को यह आदेश दिया है कि जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी सघ मे फूट डाले, उसको सघ से निकाल देना चाहिए। बौद्ध सघ की एकता को सुरक्षित रखने का अशोक का जो यह उद्योग था, उसका पता दक्षिण की बौद्ध दन्तकथाओ से भी चलता है। अष्टम शिलालेख तथा लघु स्तम्भलेखो से पता चलता है कि अशोक ने बोध गया, जहाँ बुद्ध भगवान् ने बोधि या बुद्धत्व प्राप्त किया था, लुम्बिनी ग्राम जहाँ बुद्ध पैदा हुए थे तथा कनकमुनि बुद्ध के अवशेष पर जहाँ स्तूप खडा किया गया था, वहाँ तथा अन्य बौद्ध धर्म के तीर्थ-स्थानो की यात्रा की थी। कालसी और धौली की चट्टानो पर जो अशोक के शिलालेख है, उनके निकट ही एक हाथी का चित्र भी खुदा हुआ है और उनके नीचे "गजतम" अर्थात् श्रेष्ठ हाथी और "श्वेत" अर्थात् सफेद यह खुदा हुआ है। "गजतम" कालसी की चट्टान पर और "श्वेत" धौली की चट्टान पर है। गिरनार की चट्टान पर हाथी के चित्र की रेखा तो मिट गयी है, परन्तु उनके नीचे "सर्वश्वेत हाथी सब लोगों को सुख देने वाला" यह खुदा हुआ मिलता है। इसमे कोई सदेह नही है कि श्वेत हाथी से तात्पर्य यहाँ बुद्ध से ही है। श्वेतहस्ती बुद्ध भगवान् का चिन्ह या प्रतिरूप माना गया है। प्राचीन भारतीय कला मे अनेक स्थानो पर बुद्ध भगवान् को हाथी के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है।

बौद्ध दन्तकथा के अनुसार अशोक प्रारम्भ मे अपने अनेक दुष्कर्मो तथा अपने ९९ भाइयो की हत्या करने के कारण, "चण्डाशोक" या प्रचण्ड अशोक के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु बाद को अपने असख्य धार्मिक सत्कार्यों के कारण वह "धर्माशोक" अथवा पुण्यात्मा अशोक के नाम से प्रख्यात हुआ। परन्तु अनेक विद्वान् यह मानते है कि अशोक के चरित्र का यह वर्णन काल्पनिक या बनावटी है। बौद्धो ने अशोक का ऐसा वर्णन बौद्ध धर्म का महत्व प्रकट करने तथा यह दिखाने के लिए किया है कि बौद्ध धर्म मे आने से मनुष्य के जीवन मे कैसे परिवर्तन आ जाते है। अशोक द्वारा अपने सब भाइयो की हत्या की बात कदाचित् सत्य घटना नही है। परन्तु तेरहवें शिलालेख मे स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख है कि कलिंग युद्ध के बाद, जो उसके शासन के नवे वर्ष मे हुआ था, किस प्रकार अशोक बिल्कुल बदल गया था। युद्ध के भीषण रक्तपात से उसके मन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह एक साधारण भारतीय राजा के जीवन-क्रम को त्याग कर अहिंसा का पुजारी और प्रचारक हो गया तथा एक सामाजिक और धार्मिक सुधारक के रूप मे अत्यन्त

भूति और सत्य की प्रशसा की है तथा क्रूरता, अश्रद्धा, अनादर, असहनशीलता और असत्य की घोर निन्दा की है। सब से अधिक बल जिस गुण पर उसने दिया है वह प्राणियो की अहिसा या जीवो की रक्षा है। दो और गुण जिन पर उसने अधिक बल दिया है वे पद मे अथवा आयु में अपने से बडो के प्रति आदर, उदारता और दान-शीलता है। उसने जिस तरह मनुष्यो के लिए सुख और स्वास्थ्य की व्यवस्था की थी, उसी तरह पशुओ के लिए भी की थी। उसने प्राणियो के प्रति दया की शिक्षा बार बार दी है और अनेक जलचर तथा स्थलचर पशुओ और पक्षियो का मारा जाना अपनी आज्ञा से बन्द करा दिया था। उसकी अपनी पाकशाला के लिए भी जो पशु और पक्षी मारे जाते थे उनकी सख्या भी उसने सीमित कर दी थी और ऐसे उत्सवो तथा गोष्ठियो का करना भी उसने मना कर दिया था जिनमें मास काम मे लाया जाता था। निस्सन्देह ऐसी सभा, गोष्ठी, समारोह आदि जैसे कि धर्म-परिषद्, धर्मसम्मेलन आदि, बिना किसी बाधा के हो सकते थे। कुछ निर्दिष्ट की हुई तिथियो पर प्राणियो की हिसा या उनको किसी प्रकार की पीडा पहुँचाना प्राय वर्जित था। इस तरह की वर्जित तिथियाँ ये थी आपाढ, कार्त्तिक और फाल्गुन की पूर्णिमा तथा पूर्णिमा के एक दिन पहले और एक दिन बाद की तिथि तथा बौद्धो के उपवास के दिन अर्थात् प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या। धर्मलेखो में तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्र विशेष रूप से पवित्र माने गये हैं—इसका कारण कदाचित् यह था कि तिष्य नक्षत्र मे अशोक पैदा हुआ था और पुनर्वसु नक्षत्र मौर्यो के मूल-प्रदेश मगध का नक्षत्र था। राजधानी में तथा राजकीय परिवार मे यज्ञो में पशुओ का बलिदान भी बन्द कर दिया गया था। अपने परिवार के भिन्न भिन्न सदस्यो की ओर से उसने दान के योग्य व्यक्तियो को दान देनेकी प्रथा प्रचलित की थी। एक लघु-स्तम्भ-लेख में उसने अपने महामात्रो को आदेश दिया है कि उसकी दूसरी रानी कारुवकी अर्थात् तीवर की माता ने जो कुछ दान दिया है वह उसी रानी का दान गिना जाना चाहिए। एक दन्तकथा मे कहा गया है कि अशोक ने अपना सब कुछ, जो वह दे सकता था, सघ को दे दिया था और आप एक अधिकार-हीन तथा धन-हीन दशा में मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

अशोक ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्रजा से भूमि की पैदावार का जो षष्ठाश, कर के रूप में लिया जाता है वह ऋण के रूप में है और उस ऋण का

पालना राजा का कर्त्तव्य है। इसका तात्पर्य यह है कि राजा प्रजा की रक्षा करे। परन्तु अशोक ने बारम्बार अपने धर्मलेखो मे कहा है कि मैं अपनी प्रजा को इस लोक मे तथा परलोक मे सुखी बनाना चाहता हूँ। उसने तो यहाँ तक कहा है कि मेरी सब प्रजा, चाहे वह किसी सम्प्रदाय या जाति की हो, मेरे पुत्र के समान है। प्रजा का काम हर समय और हर जगह शीघ्रता से हो, ऐसी प्रणाली उसने स्थापित की थी। यद्यपि वह बौद्ध धर्मानुयायी था, तथापि वह कभी दूसरे धर्म की निन्दा नहीं करता था और न दूसरे धर्मों पर कोई अत्याचार होने देता था। अशोक के बारहवें शिलालेख से प्रकट है कि वह सब सम्प्रदायो के साथ समान व्यवहार करता था और सब सम्प्रदाय के लोगो से उसका कहना यही था कि सब एक दूसरे के मत का आदर करें। वह निश्चित रूप से अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा तथा दूसरे सम्प्रदायो की निन्दा करने के विरुद्ध था और इस सम्बन्ध मे उसने लोगो को वाक्संयम की शिक्षा दी है। उसने अपने साम्राज्य के सब भागो मे बसने वाले लोगो को आपस में मेलजोल से रहने की सलाह दी है। उसने अपने धर्म-लेख में यह भी घोषित किया है कि सब सम्प्रदायो के लोगो मे उन उन सम्प्रदायो के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। ऐसी विचार की उदारता निःसन्देह विलक्षण और स्मरण रखने योग्य है। अशोक की सम्मति में आत्म-संयम और विचार-शुद्धि की कामना सब सम्प्रदायो में समान रूप से पायी जाती है। षष्ठ स्तम्भलेख मे उसने लिखा है कि मैं सब समाजो के लोगो के हित और सुख का ध्यान रखता हूँ तथा सब सम्प्रदायो के लोगो का आदर-सत्कार करता हूँ। उसका यह विचार था कि दूसरे सम्प्रदायो का आदर करने से धर्म का आदर और उसकी वृद्धि होगी और साथ ही सब सम्प्रदायो का भी आदर और उन्नति होगी। वह ब्राह्मणो और बौद्ध श्रमणो में कोई भेद नहीं करता था और जैसा कि उसके पंचम शिलालेख तथा स्तम्भलेख से प्रकट है, उसके धर्म-महामात्र नामक कर्मचारी, शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा श्रमण, आजीविक और निर्ग्रन्थ (जैन) आदि सब सम्प्रदायों और सब वर्गों के हित और सुख को सम्पन्न करने के लिए नियुक्त थे। सब लोगो के साथ उसका निष्पक्षता का व्यवहार बिहार के गया जिले मे बराबर पहाड़ी पर दो कृत्रिम गुफाओं से प्रकट है, जिनको उसने आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं के लिए निर्मित कराया था।

५—लोकहित सम्बन्धी कार्य

अशोक द्वारा प्रचारित धर्म के अनुसार ही उसकी नीति भी थी, जिसके अनुसार वह न केवल अपनी ही प्रजा के हित और सुख का वरन अपने साम्राज्य की सीमा के वाहर अन्य देशो के लोगो के हित और सुख का भी ध्यान रखता था, मानो मनुष्य मात्र उसकी ही सन्तान हो । परोपकार के सम्बन्ध में वह मनुष्यो और पशुओ के बीच भी अधिक भेदभाव नही रखता था ।

उसने मनुष्यो और पशुओ की चिकित्सा के लिए अलग अलग प्रवन्ध कर रक्खा था और न केवल अपने साम्राज्य के भीतर वरन साम्राज्य के वाहर अनेक विदेशो में, विशेषकर पश्चिम और दक्षिण के देशो में, उसके द्वारा औपधियाँ लायी और रोपी गयी तथा मूल और फल के वृक्ष भी जहाँ नही थे वहाँ लाये और रोपे गये। उसने सडको पर मनुष्यो और पशुओ को छाया देने के लिए वरगद के पेड लगवाये, आम्र वृक्षो की वाटिकाएँ लगवायी, आठ आठ कोस पर कुए खुदवाये और मनुष्यो तथा पशुओ के लिए स्थान स्थान पर पौसले वैठाये । अपने शासन के प्रथम २६ वर्षो के अन्दर उसने २५ वार वन्दियो को कारागार से मुक्त करने का आदेश दिया । चतुर्थ स्तम्भलेख के अनुसार उसने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार जिले के शासको के हाथ में दे दिया था, जिससे कि वे निश्चिन्त होकर अपना कर्त्तव्य पालन करे तथा न्याय करने में कोई पक्षपात न करे। उसने अपने न्याय-विभाग के अफसरो को ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, आलस्य और तन्द्रा आदि दोषो से दूर रहने का आदेश दे रक्खा था। उसने यह भी आदेश दिया था कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है, उनको तीन दिन की मोहलत दी जाये, जिसमें कि इस मोहलत के भीतर वे अपने जीवन-दान के लिए न्याय-विभाग से पुनर्विचार की प्रार्थना कर सके या दण्ड का रुपया भरकर मुक्ति करा सके अथवा मुक्ति न होने पर उनके कुटुम्ब वाले उनके पारलौकिक सुख और शाति के लिए दान, उपवास, व्रत आदि कर सके । इन सव कार्यो से सूचित होता है कि अशोक अपनी प्रजा के न केवल इस लोक में हित और सुख के लिए वरन धर्माचरण के प्रचार के द्वारा उनके पारलौकिक हित और सुख के लिए भी चिन्ता करता था । वह जो कुछ भी लोकहित का कार्य करता था उसको वह धर्म का आचरण समझकर करता था और आशा करता था कि लोग पुण्य का कार्य

करने में उनका अनुकरण करेंगे। उसने अपने एक धर्मलेख में यह भी दावा किया है कि मेरे धर्म के प्रचार से लोगो में सदाचार की ऐसी वृद्धि हुई है कि वे देवताओ से मिलने के योग्य बन गये है। उसने सन्तोष के साथ यह भी लिखा है कि इस धर्म के प्रचार में जो सफलता उसे मिली है, वह पिछले कई सौ वर्षों से किसी को नही मिली थी, यद्यपि पिछले समय के धर्मिष्ठ राजाओ ने अनेक दिव्य और आकर्षक प्रदर्शनो के द्वारा लोगो मे धर्म, सत्कर्म तथा स्वर्ग-प्राप्ति के प्रति प्रेम उत्पन्न करने की अनेक चेष्टाएँ की थी।

६—धर्म का प्रचार

अपने विस्तृत साम्राज्य के प्रत्येक भाग मे सब सम्प्रदायो तथा सब प्रकार के लोगो मे धर्म का प्रचार करने के लिए अशोक ने अपने अनुशासन या धर्म-लेख भिन्न-भिन्न स्थानो पर शिलाओ तथा स्तम्भो पर खुदवा दिये थे, धर्म-महामात्र नामक उच्च कर्मचारी नियुक्त किये थे तथा अपने भिन्न-भिन्न अधिकारियो को एक-एक वर्ष पर या तीन-तीन वर्ष पर या पाच-पाच वर्ष पर, धर्म का उपदेश देते हुए दौरा करने का आदेश भी दिया था। वह स्वय भी इसी उद्देश्य से धर्म-यात्रा या तीर्थ-यात्रा पर निकलता था। उसके धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी सब सम्प्रदायो और सब जातियो के बीच, गृहस्थो, भिक्षुओ, ब्राह्मणो, बौद्धो, आजीविको और निर्ग्रन्थो (जैनो) आदि के बीच, धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए, सदा रत रहते थे। अशोक स्वय तथा उसके राजकर्मचारी जब जब अवसर मिलता था तब तब लोगो को धर्म का उपदेश देने से नही चूकते थे। रज्जुक नामक कर्मचारियो को विशेष रूप से इस बात का आदेश था। अशोक ने दक्षिण तथा पश्चिम के अनेक पड़ोसी देशो में अपने धर्म के सिद्धातो का प्रचार करने के लिए राजदूत भी भेजे थे। कई विद्वानो ने पश्चिमी एशिया पर और विशेषकर के वहाँ के प्रचलित धर्म पर बौद्ध धर्म का जो प्रभाव पड़ा, उसकी खोज की है। यह उस क्षेत्र में अशोक द्वारा धर्म के प्रचार ही का परिणाम माना जाता है। बौद्ध दन्तकथाओ मे बगाल की खाडी के पार लका और सुवर्ण भूमि में अशोक द्वारा भेजे गये मिशनो या धर्मप्रचारको का वर्णन मिलता है।

सप्तम स्तम्भलेख म अशोक ने कहा है कि मनुष्यो में धर्म की वृद्धि दो उपायो से हुई है। एक उपाय तो यह है कि मनुष्यो को नियमो या कानूनो के द्वारा अमुक-अमुक कार्य करने से रोका जाय जैसे कि अमुक अमुक प्राणी न मारे जायें इत्यादि। दूसरा उपाय यह है कि विचार-परिवर्तन द्वारा मनुष्यो को धर्म के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया जाय। परन्तु अशोक के मत में दूसरा उपाय अधिक महत्व का तथा अधिक प्रभावशाली है। इस प्रकार अशोक कदाचित् समार के उन थोडे से राजनीतिज्ञो में गिना जायगा, जिन्होने यह अनुभव किया कि लोगो की भावनाओ और विचारो में परिवर्तन लाने के लिए कानून की अपेक्षा प्रचार अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है।

अशोक की एक विशेषता यह भी थी कि वह कोई ऐसा उपदेश या शिक्षा नही देता था जिसे वह स्वय कार्य में नही लाता था। जब प्रथम शिलालेख खुदवाया गया उस समय भी उसकी पाकशाला मे तीन जीव मारे जाते थे—उसका यह स्वीकार करना उसकी एक विलक्षणता है। उसकी असाधारण स्पष्टवादिता तथा सत्य-प्रेम का ही परिणाम है कि उसने प्रथम शिलालेख में यह कहा कि मेरी पाकशाला में पहले प्रतिदिन कई हजार जीव मारे जाते थे, पर अब केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते है और आगे से यह तीनो जीव भी नही मारे जाएगे।

इसमें कोई सदेह नहीं है कि अशोक भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायो के प्रति बिलकुल निष्पक्षता का व्यवहार करता था और कभी भी किसी की धार्मिक भावनाओ को ठेस नही पहुँचाता था। वह जीव-रक्षा और जीव-दया पर विशेष बल देता था और ऐसा प्रतीत होता है कि वह धर्म के नाम पर भी किसी प्राणी की हत्या का विरोधी था। वह कुछ प्रचलित रीति-रिवाजो को भी नापसन्द करता था और उनकी समालोचना करता था। अतएव सभव है कि उसके कुछ आदेशो को कुछ सम्प्रदायो ने अपने स्वाभाविक अधिकारो पर हस्तक्षेप समझा हो। इसके अतिरिक्त उन आदेशो के अनुसार काम करना तत्सम्बन्धी कर्मचारियो के ही हाथ में था और यह विश्वास करना कठिन है कि अपने स्वामी के आदेशो के विपरीत उनमें से कुछ ने, अवसर प्राप्त होने पर, लोगो के साथ कभी कभी अतिशयता का व्यवहार न किया हो।

७–अशोक की महानता

अशोक कई दृष्टियों से अद्‌भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति और ससार के इतिहास मे महान् से महान् तथा असाधारण पुरुषो मे था। वह साथ ही एक महान् विजेता, निर्माता, राजनीति-विशारद, शासक, धर्म और समाजसुधारक, दार्शनिक और सन्त पुरुष था। ससार की आध्यात्मिक विजय के लिए उसने जिस मिशन अथवा प्रचारक-मण्डल का सगठन किया था, उसने एक छोटे से साम्प्रदायिक धर्म को ससार के एक महान् धर्म में परिवर्तित कर दिया था। उसने सैनिक विजय का त्याग किसी पराजय के बाद नही, बल्कि कलिंग के शक्तिशाली लोगो पर एक बडी विजय पाने के बाद किया और एक बडे शक्तिशाली साम्राज्य के अटूट साधनो से सम्पन्न होते हुए भी उसने पडोसी राज्यो के साथ सहनशीलता की नीति का अनुसरण किया था। उसमे असाधारण तेजस्विता, योग्यता, उत्साह और सगठन-शक्ति का गुण था और जितनी उसमें उदारता और धैर्य की मात्रा थी उतनी ही उसमे अपने उद्देश्य के लिए सच्चाई भी थी। अशोक की धार्मिकता और बिना जातपात और साम्प्रदायिक भेदभाव के, अपनी सब प्रजा के साथ उदारता और निष्पक्षता का व्यवहार कई पीढियो तक भारत के बाद के धार्मिक राजाओ के सामने आदर्श बना रहा और उन पर अच्छा प्रभाव डालता रहा।

परन्तु अशोक के पहले जो बडे-बडे साम्राज्य-निर्माता हुए और जिनकी बदौलत मगध दक्षिणी बिहार के एक छोटे से राज्य से बढकर एक महान् साम्राज्य हो गया (जिसमे, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान के अधिकतर भाग सम्मिलित थे) वे अशोक की इस नीति को कभी पसन्द न करते, जिसका अनुसरण करके अशोक ने अपने राजकर्मचारियो को धर्म-प्रचारक बना दिया, सैनिक अभियानो और विजयो को त्याग कर, कलहकारी और उपद्रवी जातियो को, विशेषकर पश्चिमोत्तर सीमावर्ती जातियो को, धर्मप्रचारको की देखभाल मे छोड दिया और साम्राज्य के समस्त साधनो को परोपकार दान तथा धार्मिक प्रचार मे लगा दिया। वे लोग अशोक की इस नीति को कभी भी एक व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञ की बुद्धिमत्ता न समझते और एक आदर्शवादी का स्वप्न कह कर इसकी उपेक्षा करते। वास्तव मे अशोक का शक्तिशाली हाथ हट जाने के बाद, उसके उत्तराधिकारियो मे यह शक्ति न रही कि वे साम्राज्य के छिन्न-भिन्न तथा दूरवर्ती प्रान्तो को धीरे धीरे

स्वाधीन राज्य होने से रोक सकते। मगध की जिस सैनिक शक्ति ने, चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में, पश्चिमी एशिया के स्वामी सेल्यूकस की प्रवल सेना को मार भगाया था, वही सैनिक शक्ति अशोक के उत्तराधिकारियो के समय मे इतनी निर्वल हो गयी कि वैक्ट्रिया के यूनानी राजाओ के आक्रमण को रोकने में असमर्थ रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी राजाओ की सेना उत्तरी भारत के मैदानो को पार करती हुई पूर्व मे पाटलिपुत्र तक आ पहुची।

परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि अशोक की शातिपूर्ण नीति, ससार को दुख और कलह से मुक्त करने के लिए, वुद्ध तथा अन्य अनेक धार्मिक नेताओ के प्रयत्नो के समान, विल्कुल असफल रही। वीसवी शताव्दी के ससारव्यापी दो महायुद्धो ने सम्भवत यह स्पष्ट कर दिया ह कि अशोक, शस्त्र द्वारा देशो की विजय की निंदा करने तथा मनुष्यो के हृदयो को प्रेम द्वारा विजय की प्रशसा करने मे, सही रास्ते पर था। वह एक ऐसे ससार का स्वप्न देखता था जिसमे सव लोग एक ही परिवार के सदस्यो के समान मेलजोल मे रहे। सभव है उस स्वप्न का पूरा होना अभी दूर की वात हो। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लोग शनै शनै उसके निकट आ रहे हैं।

८—अशोक के धर्मलेख

अशोक के धर्मलेख प्राकृत भाषा में लिखे हुए हैं। अशोक-साम्राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश में जो लेख मानसेहरा और शाहवाजगढ़ी में हैं, उनकी लिपि खरोष्ठी है, परन्तु इन दो को छोडकर और जितने लेख हैं सब ब्राह्मी लिपि में है। खरोष्ठी पश्चिमी एशिया की एरमेइक लिपि का ही रूपान्तर है और इसका प्रचार भारतवर्ष के उत्तरापथ प्रदेश में तव हुआ जव वह प्रदेश सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व दो शताव्दियो तक फारस के एकमेनियन राजाओ के अधिकार में था। खरोष्ठी लिपि फारसी लिपि की तरह दाहिनी ओर से वाईं ओर को लिखी जाती है। खरोष्ठी कुछ शताव्दियो के वाद आप ही अपनी मृत्यु से मर गयी, क्योकि वह सस्कृत या प्राकृत भाषाओ को लिखने में समर्थ न थी। ब्राह्मी लिपि सभवत सिन्धु घाटी की उस प्रागैतिहासिक लिपि से निकली है जो अर्द्ध-चित्रसकेत के रूप में थी। ब्राह्मी

लिपि का प्रचार भारतवर्ष के अधिकतर भाग में था। ब्राह्मी लिपि न केवल वर्तमान भारत के भिन्न भिन्न भागों में प्रचलित, संस्कृत तथा द्राविड़ से निकली हुई, अनेक लिपियों की जननी है, वरन् दक्षिण पूर्वी एशिया में तिब्बती, सीलोनी, बर्मी तथा जावानी आदि अनेक लिपियाँ भी उसी से निकली हैं। खरोष्ठी और ब्राह्मी के अतिरिक्त एरेमेइक लिपि में भी एक खण्डित शिलालेख पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में टैक्सिला (तक्षशिला) से प्राप्त हुआ है, जो अशोक का कहा जाता है, परन्तु इसमें सन्देह है।

अशोक के धर्मलेख मोटे तौर पर दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—एक तो वह जो शिलाओं या चट्टानों पर खुदे हुए हैं और दूसरे वह जो पत्थर के स्तंभों पर खुदे हुए हैं। शिलाओं पर खुदे हुए लेख भी तीन भागों में विभाजित किए जा सकते हैं—एक शिलालेख, दूसरे लघु शिलालेख, तीसरे गुफालेख। स्तंभलेख भी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—एक स्तंभलेख, दूसरे लघु स्तंभलेख।

षष्ठ स्तंभलेख से पता चलता है कि अशोक ने अपने धर्मलेख राज्याभिषेक (२६९ ई० पू०) के बारह वर्ष बाद या लगभग २५७ ई० पू० से लिखवाना प्रारम्भ किया था। सबसे पहले उसने लघु शिलालेख लिखवाये। उसके कुछ समय बाद चतुर्दश शिलालेख खुदवाये। तेरहवें शिलालेख में अशोक के शासन के नवें वर्ष का तथा आठवें शिलालेख में उसके शासन के ग्यारहवें वर्ष का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख अशोक के जीवन की कुछ पूर्व घटनाओं के सम्बन्ध में है। तृतीय और चतुर्थ शिलालेख शासन के तेरहवें वर्ष में तथा पंचम शिलालेख अशोक-शासन के चौदहवें वर्ष में जारी किये गये। तीन गुफालेखों में प्रथम और द्वितीय गुफालेख शासन के तेरहवें वर्ष में और तृतीय गुफालेख राज्य-शासन के २०वें वर्ष में लिखवाये गये।

लघु स्तंभलेखों में कोई तिथि नहीं दी हुई है। दो स्तंभलेख राज्य-शासन के २१वें वर्ष में खुदवाये गये थे, यद्यपि उनमें से एक में ऐसी घटना का उल्लेख है जो अशोक के शासन के १५वें वर्ष में हुई थी। प्रथम, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ स्तंभलेख राज्य शासन के २६वें वर्ष में तथा सप्तम स्तंभलेख उसके शासन के २८वें वर्ष में लिखवाये गये थे। परन्तु षष्ठ स्तंभलेख में भी एक ऐसी पूर्व घटना का उल्लेख है जो शासन के १२वें वर्ष में घटित हुई थी।

६–शिलाओ पर लेख

लघु शिलालेख—अशोक का लघु शिलालेख निम्नलिखित स्थानो पर पाया गया है —

१ जयपुर (राजस्थान) जिले के बैराट नामक स्थान पर।
२ हैदराबाद के रायचूर जिले में कोपवल के पास गवीमठ मे।
३ विंध्य प्रदेश के दतिया जिले में गुजर्रा नामक स्थान पर।
४ हैदरावाद के रायचूर जिले में मास्की नामक स्थान पर।
५ हैदरावाद के रायचूर जिले में गवीमठ के पास पाल्की गुण्डू में।
६ मध्यप्रदेश के जवलपुर जिले मे रूपनाथ नामक स्थान पर।
७. बिहार के शाहावाद जिले में सहसराम नामक स्थान पर।

लघु शिलालेख की एक विचित्रता यह है कि इसका पाठ सब स्थानो में एक-सा नही है। कही कही तो पूरा पाठ और कही कही आधा ही पाठ पाया जाता है। एक ही प्रकार का लघु शिलालेख मैसूर के चीतलद्रुग जिले में ब्रह्मगिरि, जटिंग रामेश्वर और सिद्धपुर नामक स्थानो में तथा आन्ध्र राज्य के कुर्नूल जिले में येर्रा-गुडी और राजुल मन्दगिरि नामक स्थानो में पाया गया है। परन्तु इन स्थानो में एक दूसरा लेख और भी उस लेख के साथ जुडा हुआ मिलता है, जो उत्तरी भारत तथा हैदराबाद में ऊपर लिखे हुए सात स्थानो में पाया जाता है। यह शिलालेख द्वितीय लघु शिलालेख के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका पाठ भी कई स्थानो पर कुछ भिन्न भिन्न है। मैसूर के स्थानो में पाये जाने वाले लघु शिलालेख के पाठ में तथा कुर्नूल जिले में पाये जाने वाले लघु शिलालेख के पाठ मे एक दूसरेसे अन्तर विशेष रूप से पाया जाता है। मैसूर के तीन स्थानो में जो लघु शिलालेख मिलता है उस के प्रारम्भिक वाक्य से पता चलता है कि यह शिलालेख इसिला (वर्तमान सिद्धपुर) के महामात्रो को, सुवर्ण गिरि (येर्रागुडी के पास वर्तमान जोन्नगिरि) में स्थित आर्यपुत्र (जो कदाचित् राज-प्रतिनिधि के रूप मे अशोक के पुत्रो में से कोई था) और वहाँ के महामात्रो की ओर से सम्बोधित किया गया था। वैराट में प्रथम लघु शिलालेख के नाम से जो लेख है उसके अतिरिक्त एक तीसरा लघु शिलालेख और भी पाया जाता है। जिस पत्थर पर यह तीसरा लघु शिलालेख खुदा हुआ है वह कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। प्रथम और द्वितीय लघु शिलालेख

अशोक के द्वारा अपने महामात्रों को सम्बोधित करके लिखवाये गये हैं, परन्तु तीसरा लघु शिलालेख भिक्षुओं को सम्बोधित करके लिखा गया है। इस धर्मलेख की शैली अशोक के अन्य धर्मलेखों की शैली से भिन्न है।

चतुर्दश शिलालेख —अशोक के शिलालेख, जो चतुर्दश शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध हैं, निम्नलिखित स्थानों में पाये गये हैं—

१. आन्ध्र के कुर्नूल जिले में येर्रागुडी नामक स्थान पर।

२. सौराष्ट्र (काठियावाड) में जूनागढ के पास गिरनार में।

३. उत्तरप्रदेश के देहरादून जिले में कालसी नामक स्थान पर।

४. पश्चिमी पाकिस्तान के हजारा जिले में मानसेहरा नामक स्थान पर।

५. पश्चिमी पाकिस्तान के पेशावर जिले में शाहबाजगढी नामक स्थान पर।

६. बम्बई राज्य के थाना जिले में सोपारा नामक स्थान पर।

कई स्थानों पर ये लेख सुरक्षित अवस्था में नहीं हैं। चतुर्दश शिलालेख के केवल कुछ टुकड़े ही सोपारा के पास पाये गये हैं। पत्थर के जिन टुकड़ों पर वह खुदे हुए हैं उनको बम्बई ले जाकर "रायल एशियाटिक सोसायटी" और "प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम" में सुरक्षित रख दिया गया है। गिरनार की जिस चट्टान पर चतुर्दश शिलालेख खुदा हुआ है उसी पर बाद के दो और रोचक शिलालेख खुदे हुए हैं। ये हैं सन् १५० ईस्वी का शक रुद्रदामन् का शिलालेख तथा सन् ८५५–५७ ईस्वी का स्कन्दगुप्त का शिलालेख। इन दोनों शिलालेखों में सुदर्शन नामक झील पर एक बाँध के पुनर्निर्माण का उल्लेख मिलता है। परन्तु रुद्रदामन् वाले शिलालेख में झील का पूर्व इतिहास वर्णन करते हुए यह भी कहा गया है कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में राष्ट्रिय पुष्यगुप्त के द्वारा यह निर्माण कराया गया और किस प्रकार अशोक मौर्य की ओर से यवनराज तुषास्फ के द्वारा इसमें से सिंचाई के लिए नहरें निकाली गयीं।

चतुर्दश शिलालेख पुरी जिले के धौली नामक स्थान में और गंजाम जिले के जौगढ़ नामक स्थान में भी पाये जाते हैं। ये दोनों स्थान उड़ीसा में हैं। परन्तु इन दोनों स्थानों पर चतुर्दश शिलालेख के ११वें, १२वें और १३वें शिलालेख के स्थान पर दो अतिरिक्त शिलालेख पाये जाते हैं। ये दोनों अतिरिक्त शिलालेख विशेष रूप से कलिंग के लोगों और वहाँ नियुक्त अफसरों या राज्याधिकारियों के लिए लिखे गये थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कलिंग की विजय अशोक ने

अपने शासन के नवें वर्ष में की थी। जिस पहाडी की चट्टान पर जौगढ का शिलालेख खुदा हुआ है, उसको प्राचीन काल मे खेपिगल पर्वत के नाम मे पुकारते थे।

गुफालेख —बिहार में गया से लगभग १५ मील उत्तर की ओर, बरावर की पहाडी पर, जिसको प्राचीन काल में स्खलतिक पर्वत के नाम से कहते थे, चार कृत्रिम गुफाएँ है, जिनमें से तीन मे अशोक के शिलालेख खुदे हुए मिलते हैं। जैसा कि उन शिलालेखो से विदित होता है, इनमें दो गुफाएँ अशोक द्वारा आजीविक सम्प्रदाय को प्रदान की गयी थी। उसी पहाडी के एक दूसरे भाग में जिसको नागार्जुनी पहाडी कहते है, ऊपर लिखी हुई गुफाओ से एक मील की दूरी पर, तीन और गुफाएँ हैं, जिनमे भी शिलालेख खुदे हुए हैं। ये शिलालेख अशोक के पोते "देवताओ के प्रिय" दशरथ के है। ये शिलालेख भी आजीविक नामक भिक्षुओ के लिए समर्पित किये गये थे। अशोक के शिलालेख जिन तीन गुफाओ मे हैं उनके पास वाली चौथी गुफा में मौखारी राजा अनन्तवर्मन् का एक शिलालेख खुदा हुआ मिलता है। यह राजा ईस्वी सन् की पाचवी शताव्दी में हुआ था।

१०—अशोक के स्तम्भलेख

लघु स्तम्भलेख —इलाहावाद में किले के अन्दर अशोक का जो स्तम्भ खडा हुआ है वह प्रारम्भ मे प्राचीन कौशाम्बी नगरी (वर्तमान कोसम) मे स्थापित किया गया था और इसलिए उसको प्राय इलाहाबाद-कोसम स्तम्भ के नाम से कहा जाता है। उस पर अशोक के ६ प्रसिद्ध स्तम्भलेखो के अतिरिक्त उसके दो और लेख भी पाये जाते हैं। इन दो लेखो में से एक लेख भोपाल रियासत में साची नामक स्थान पर तथा उत्तर प्रदेश में बनारस के पास सारनाथ में भी पाया गया है। दुर्भाग्य से इन शिलालेखो के अक्षर सन्तोप-जनक रीति से सुरक्षित नही हैं। इस शिलालेख का पाठ तीनो स्थानो पर एक दूसरे से कुछ भिन्न है। सारनाथ के लघु शिलालेख में तो उसके साथ एक नया लेख ही जुडा हुआ है। इलाहावाद-कोसम के स्तम्भ पर एक दूसरा लघु शिलालेख है, जिसको "रानी का लेख" कहा गया है, क्योंकि इसमे अशोक की एक रानी के दान का उल्लेख है।

अशोक के दो लघु स्तम्भ-लेख उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के उत्तर मे नेपाल की तराई मे पाये गये है। इनमे से एक स्तम्भ परारिया ग्राम के समीप रुम्मिनदेई के मन्दिर के निकट खडा है। यह स्थान बस्ती जिले के दुल्हा ग्राम से लगभग पाच मील पर और नेपाल की भगवानपुर तहसील से लगभग दो मील पर है। दूसरा स्तम्भ निग्लीव ग्राम के समीप निगली सागर नामक एक बडे सरोवर तट पर खडा हुआ है। यह स्थान रुम्मिनदेई से लगभग तेरह मील पश्चिमोत्तर की ओर है। ये दोनो स्तम्भ-लेख इन स्थानो मे अशोक की यात्रा के स्मारक के रूप मे है। इनमे से पहला स्थान इसलिए पवित्र माना गया है कि वहाँ बुद्ध भगवान् पैदा हुए थे और दूसरे स्थान का महत्व इस कारण है कि वहाँ कनकमुनि बुद्ध के अवशेषो पर एक स्तूप बनवाया गया था। कनकमुनि बुद्ध बौद्धो द्वारा एक पूर्वकालीन बुद्ध के रूप मे माने जाते है।

सप्त स्तम्भलेख —अशोक के ६ धर्मलेख जिन पर खुदे हुए है ऐसे ठोस पत्थर के बने हुए स्तम्भ, उत्तर प्रदेश में मेरठ और इलाहाबाद मे तथा बिहार के चम्पारन जिले मे राधिया के पास लौरिया अरराज मे मठिया के पास लौरिया नन्दनगढ मे तथा रामपुरवा मे पाये गये है। इन भिन्न-भिन्न स्थानो के स्तम्भों पर धर्मलेख का पाठ आमतौर पर एक ही सा है, यद्यपि उनमे से कई लेखों के अक्षर सतोषजनक सुरक्षित अवस्था मे नही है। एक दूसरा स्तम्भ पूर्वी पजाब मे अम्बाला और सिरसा के बीच टोपरा के पास पाया गया है जिस पर ६ स्तम्भलेखो के साथ साथ एक सप्तम स्तम्भलेख भी खुदा हुआ है। टोपरा का यह स्तम्भ और मेरठ वाला स्तम्भ दोनो फीरोजशाह तुगलक के द्वारा वहाँ से हटा कर दिल्ली मे स्थापित किये गये थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इलाहाबाद वाला स्तम्भ प्रारम्भ मे कौशाम्बी (वर्तमान कोसम) मे था, जो इलाहाबाद से लगभग तीस मील पर एक छोटा-सा गाव है। परन्तु यह पता नही चलता कि यह कौशाम्बी से कब और किसके द्वारा इलाहाबाद को लाया गया। इलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर ६ स्तम्भलेखों के अतिरिक्त अशोक के दो और लेख खुदे हुए है, जो "रानी का स्तम्भलेख" तथा "कौशाम्बी का स्तम्भलेख" इस नाम से प्रसिद्ध है और जिनका उल्लेख लघु स्तम्भलेख के रूप मे ऊपर हो चुका है। इलाहाबाद के स्तम्भ पर एक रोचक लेख और भी खुदा हुआ पाया जाता है। यह प्रसिद्ध लेख ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी के गुप्तवंशीय सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रशसा मे है। इन प्राचीन लेखो के

अक्षरो को बाद में खोदे जाने वाले लेखो से हानि पहुँची है। ये बाद के लेख अधिक-तर व्यक्तिगत लेखो के रूप में हैं, जैसा कि प्राय यात्री लोग खोद दिया करते हैं। परन्तु उनमे एक फारसी का लेख भी है, जिसे मुगल बादशाह जहाँगीर (१६०५-२७ ई०) ने खुदवाया था।

अशोक के धर्मलेख

(अशोक के शिलालेखों, स्तंभलेखों और गुहालेखों का संग्रह)

अशोक के धर्मलेख

चट्टानों पर खुदे हुए चतुर्दश शिलालेख

(अशोक के चतुर्दश शिलालेख गिरनार, कालसी, मानसेहरा, शाहबाज-गढ़ी और येर्रागुडी में पाये जाते हैं। सोपारा में केवल अष्टम और नवम शिला लेखों के कुछ टुकड़े ही मिलते हैं। धौली और जौगड़ में प्रथम शिलालेख से दशम शिलालेख तक तथा चौदहवां शिलालेख पाये गये हैं। परन्तु इन दोनों स्थानों में ग्यारह से लेकर तेरहवें शिलालेख के स्थान पर दो विशेष शिलालेख हैं, जो अतिरिक्त शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध हैं)

गिरनार पर्वत की चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने लिखवाया है। यहां (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिनमें हिंसा आदि होती हों) न किया जाय। क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज (मेले, उत्सव) में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रति-दिन कई हजार जीव सूप (शोरवा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं—दो मोर और एक मृग[1], पर मृग का मारा जाना निश्चित नहीं है। यह तीनों प्राणी भी भविष्य में नहीं मारे जावेंगे।

गिरनार का द्वितीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड, पाड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी (लका) तक और अन्तियोक नामक यवनराज और जो उस अन्तियोक के पडोसी राजा हैं उन सब के देशो में देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यो की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओ की चिकित्सा के लिए। औषधियाँ भी मनुष्यो और पशुओ के लिये जहाँ-जहाँ नही थी वहाँ-वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ-जहाँ नही थे वहाँ-वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये है। मार्गो में पशुओ और मनुष्यो के आराम के लिए कुएँ खुदाये गये हैं और वृक्ष लगाये गये हैं।

गिरनार का तृतीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य मे सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राज-कर्मचारी पाच-पाच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामो के लिए (यह प्रचार करते हुए) दौरा करें—"माता-पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्र, परिचित, स्वजातिवालो तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है, जीवहिंसा न करना अच्छा है, थोडा व्यय करना और थोडा सचय करना अच्छा है।" (आमात्यो की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियो को आज्ञा देगी कि वे इन नियमो के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करे।

गिरनार का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल मे—कई सौ वर्षो मे—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढता ही गया। पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण ने भेरी (युद्ध के नगाडे) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द मे बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षो से नही हुआ था वैसा आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओ का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का सत्कार, माता-पिता की सेवा तथा बूढो की सेवा बढ गयी है। यह तथा अन्य बहुत प्रकार का धर्माचरण बढा है। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढायेंगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योकि धर्म का अनुशासन ही श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता। इसलिए उस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। (लोग) इस बात की वृद्धि मे लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

गिरनार का पंचम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने मे लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैने बहुत से अच्छे काम किये है। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होगी वे सब कल्प के अन्त तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे। किन्तु जो इस कर्तव्य का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योकि पाप

करना आसान है। पूर्व काल मे धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नही होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सप्रदायो के बीच धर्म मे रत लोगो के तथा यवन, काम्बोज, हित और सुख के लिए गान्धार, राष्ट्रिक, पीतिनिक और पश्चिमी सीमा पर (रहने वाली जातियो) में धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा लोगो के हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवको के बीच उनके हित और सुख के लिए तथा जो धर्माचरण में लगे हुए है, उनके हित और सुख के लिए तथा (सासारिक) लोभ और लालसा से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त है। वे अन्यायपूर्ण वध और बन्धन को रोकने के लिए तथा (उन लोगो का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त है जो बडे परिवार वाले है या भूत प्रेत आदि की बाधा से पीडित है[1] या बहुत बुढ्ढे हैं। वे पाटलिपुत्र मे और बाहर हमारे रिश्तेदारो (के अन्त पुरो मे) नियुक्त है। ये धर्म-महामात्र (यह देखने के लिए) नियुक्त है कि धर्म का आचरण । इस उद्देश्य से यह धर्मलेख लिखा गया

गिरनार का षष्ठ शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अतीत काल में पहले बरावर हर समय राज्य का काम नही होता था और न हर समय प्रतिवेदको (गुप्तचरो) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मै खाता होऊँ या अन्त पुर में रहूँ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊँ या टहलता होऊँ या सवारी पर होऊँ या कूच कर रहा होऊँ, सब जगह सब समय, प्रतिवेदक (गुप्तचर) प्रजा का हाल मुझे सुनावे। मै प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मै स्वय अपने मुह से आज्ञा दू कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रो को कोई आवश्यक आज्ञा दी जाय और यदि उस विषय

---

१. "या भूत प्रेत आदि की बाधा से पीड़ित है" इसके स्थान पर कुछ लोगों ने यह अर्थ किया है—"या जिन्होंने किसी के उकसाने पर अपराध किया है।"

में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मन्त्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घडी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकार्य करूँ मुझे संतोष नही होता। सब लोगो का हित करना मैं अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगो का हित, परिश्रम और राज-कार्य-सम्पादन के बिना नही हो सकता। सब लोगो का हित करने से बढकर और कोई कार्य नही है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियो के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊ और इस लोक में लोगो को सुखी करूँ तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊँ। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र, पोते तथा परपोते सब लोगो के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

गिरनार का सप्तम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते है कि सब जगह सब सम्प्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योंकि सब सम्प्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते है। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—अच्छी या बुरी, ऊची या नीची—होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल एक अंश में (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नही कर सकता उसमें (कम से कम) संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है[1]।

---

१. कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

गिरनार का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओ में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष वाद, जबसे सबोधि (अर्थात् ज्ञानप्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) इन धर्मयात्राओ (का प्रारम्भ हुआ)। इन धर्मयात्राओ में यह होता है—ब्राह्मणो और श्रमणो का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धो का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियो के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-सबधी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्मयात्रा में देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते है।

गिरनार का नवम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरो पर) अनेक प्रकार के वहुत से ऊचे और नीचे मगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरो पर स्त्रिया अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मगलाचार करती हैं। मगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मगलाचार में दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओ का आदर, प्राणियो की अहिंसा और ब्राह्मणो तथा श्रमणो को दान तथा इसी प्रकार के दूसरे मगल-कार्य होते है। इसलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी को कहना चाहिए—"यह मगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य सिद्ध न हो जाय।" यह भी कहा गया है कि दान देना अच्छा है। किन्तु कोई दान या उपकार ऐसा नही है जैसा कि धर्म का दान या धर्म का उपकार है। इसलिए मित्र, सुहृद, बन्धु, कुटुम्बी और सहायक को अमुक अमुक अवसर पर अपने मित्र बन्धु

आदि मे कहना चाहिए :—"अमुक कार्य अच्छा है, अमुक कार्य करना चाहिए, अमुक कार्य करने मे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।" और स्वर्ग की प्राप्ति से बढकर इष्ट वस्तु क्या है ?

गिरनार का दशम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा, यश या कीर्ति को बडी भारी वस्तु नही समझते। (जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते है) सो इसलिए कि वर्तमान मे और भविष्य मे मेरी प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने मे उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते है। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते है वह सब परलोक के लिए करते है, जिसमें कि सब लोग दोष से रहित हो जाय। जो अपुण्य है, वही दोष है। सब कुछ त्याग करके बडा पराक्रम किये बिना कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। बडे आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

गिरनार का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है — कोई ऐसा दान नही जैसा कि धर्म का दान है (कोई ऐसी मित्रता नही जैसी कि) धर्म के द्वारा मित्रता है, (कोई ऐसा बटवारा नही जैसा कि) धर्म का बटवारा है (कोई ऐसा सबन्ध नही जैसा कि) धर्म का सबन्ध है। धर्म मे यह होता है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिवालो तथा ब्राह्मणो और श्रमणो को दान दिया जाय और प्राणियो की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र भाई, मित्र, परिचित, जातभाई और पडोसी

गिरनार का चौदहवा शिलालेख

ये धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये है। (ये लेख) कही सक्षेप मे, कही मध्यम रूप में और कही विस्तृत रूप में हैं। क्योकि सब जगह के लिए सब बात लागू नही होती[1]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से (लेख) लिखवाये गये है और बहुत से लगातार लिखवाये जाएगे। कही कही विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार बार कही गयी है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इन लेखो में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, सक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

गिरनार के तेरहवें शिलालेख के नीचे खुदे हुए हाथी के चित्र के नीचे खुदा हुआ लेख

सर्वश्वेत हाथी सब लोक को सुख देने वाला।

कालसी में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहां (मेरे राज्य मे) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योकि देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले-उत्सव) हं जिन्हें देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते

---

१ कोई कोई इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते है—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हं।"
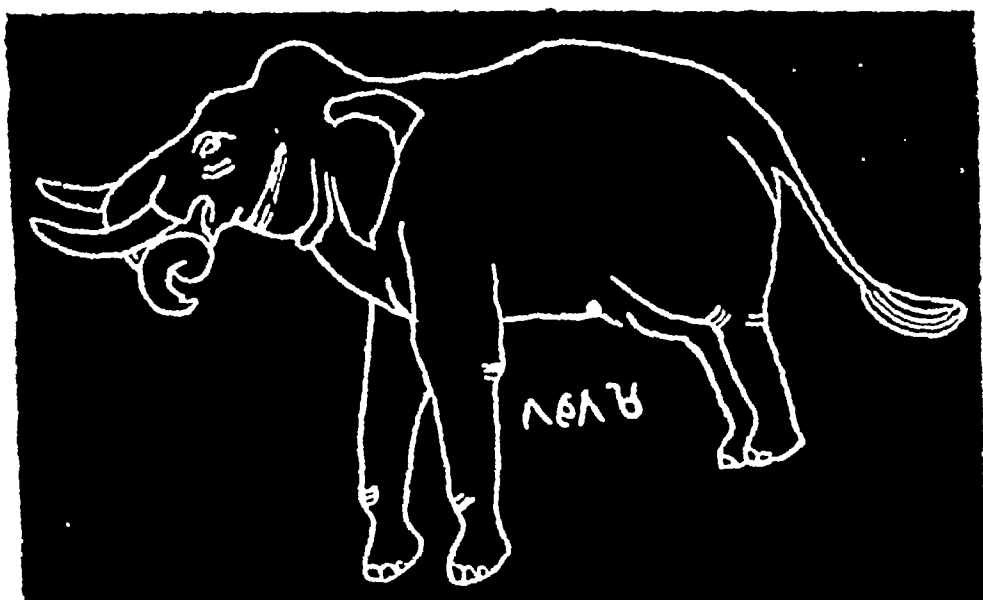
कालसी की चट्टान पर खुदी हुई हाथी की आकृति जिसके नीचे ब्राह्मी अक्षरों में "गजतम" (संस्कृत 'गजोत्तम') अर्थात् श्रेष्ठ हाथी यह चार अक्षरों का लेख खुदा हुआ है।
हाथी बुद्ध के लिए संकेत-सूचक है।
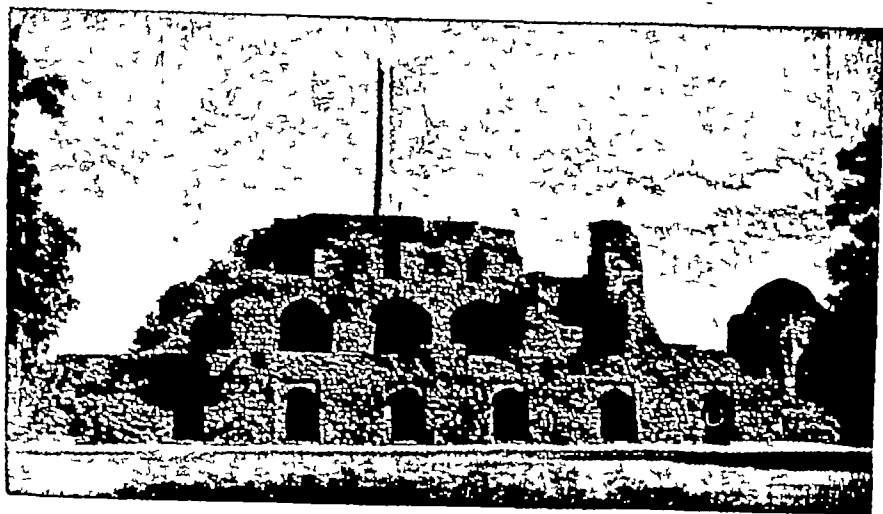
यह अशोक स्तम्भ पहले टोपरा में स्थित था। वहां से सुल्तान फीरूज शाह (१३५१-८८ ई०) के द्वारा दिल्ली लाया गया और दिल्ली गेट या दिल्ली दरवाजा के बाहर फीरूज शाह के तिमजले कोटले में खड़ा किया गया। वहीं आजकल यह स्थित है।

है। पहले देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरवा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब से जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते है, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नही है। (भविष्य में) यह तीनो प्राणी भी नही मारे जाएगे।

कालसी का द्वितीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य है जैसे चोड, पाड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, वहाँ तथा अन्तियोक नामक यवन राज और जो उस अन्तियोक के समीप सामन्त राजा है, उन सबके देशो मे देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यो की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओ की चिकित्सा के लिए। औषधियाँ भी मनुष्यो और पशुओ के लिए जहाँ-जहा नही थी, वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी है। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ जहाँ नही थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये है। मार्गों मे पशुओ और मनुष्यो के आराम के लिये वृक्ष लगाये गये और कुँएँ खुदवाये गये है।

कालसी का तृतीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य मे सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पाच-पाच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामो के लिए (यह प्रचार करते हुए) दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्र, परिचित, स्वजातिबान्धव तथा

ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है, जीवहिंसा न करना अच्छा है, थोडा व्यय और थोडा सचय करना अच्छा है ।" (अमात्यो की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियो को आज्ञा देगी कि वे इन नियमो के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें ।

कालसी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षों से—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढता ही गया । पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाडे) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है । देव-विमान, हाथी, (नरक सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों से नही हुआ था वैसा आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओ का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढो की सेवा बढ गयी है । यह तथा अन्य प्रकार का धर्माचरण बढा है । इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढायेगे । देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे । क्योकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है । जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता । इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है । लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है । राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया ।

कालसी का पंचम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं —अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने मे लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो सन्तान होगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप तेजी से आगे बढता है। पूर्व काल मे धर्म-महामात्र नाम के राज-कर्मचारी नही होते थे। (पर) मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सम्प्रदायो के बीच धर्म में रत लोगो तथा यवन, काम्बोज, गान्धार और पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियो) के बीच धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त है। वे स्वामी और सेवको, ब्राह्मणो और धनवानो, अनाथो और वृद्धो के बीच धर्म मे अनुरक्त जनो के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेडी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं, वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेडी मे जकडे हुओ को छुडाने के लिए और जो भूत प्रेत आदि की बाधाओ से पीडित हैं उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगो का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बडे परिवार वाले हैं या बहुत बुड्ढे हैं। वे पाटलिपुत्र मे और बाहर के नगरो मे सब जगह हमारे भाइयो, बहिनो तथा दूसरे रिश्तेदारो के अन्तःपुरो मे नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशो मे सब जगह धर्मानुरागी लोगो के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं और दान देने मे कितना प्रेम रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनो तक स्थिर रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

कालसी का षष्ठ शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नही होता था और न हर समय प्रतिवेदको (गुप्तचरो) से समाचार ही सुना जाता था । इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय, चाहे मै खाता होऊँ या अन्त पुर में होऊँ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊँ या टहलता होऊँ या सवारी पर होऊँ या कूच कर रहा होऊँ, सब जगह सब समय प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें । मैं प्रजा का काम सब जगह करूँगा । यदि मैं स्वय अपने मुख से आज्ञा दू कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रो को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और यदि उस विषय मे कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मन्त्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घडी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय । क्योकि मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राजकार्य करूँ मुझे सतोष नही होता । क्योकि सब लोगो का हित करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ । पर सब लोगो का हित परिश्रम और राजकार्य-सम्पादन के बिना नही हो सकता । सब लोगो का हित करने से बढकर कोई बडा कार्य नही है । जो कुछ पराक्रम मै करता हूँ वह इसलिए कि प्राणियो के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊँ और इस लोक में लोगो को सुखी करूँ तथा परलोक मे उन्हे स्वर्ग का लाभ कराऊँ । यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र और पत्नियाँ सब लोगो के हित के लिए पराक्रम करें । पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है ।

कालसी का सप्तम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब जगह सब सप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें । क्योकि सब सप्रदाय सयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं । परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊची या नीची,

अच्छी या बुरी होती है। वे या तो संपूर्ण रूप से या केवल आंशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

कालसी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तब से) धर्मयात्राओं (का प्रारंभ हुआ)। इन धर्मयात्राओं में यह होता है —ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें स्वर्ण दान देना, ग्राम-वासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-संबन्धी चर्चा करना। इस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्मयात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते हैं।

कालसी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसा) कहते हैं —लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों

---

[1] कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"किन्तु जो बहुत दान करता है पर उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

पर स्त्रिया अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मगलाचार करती है। मगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मगलाचार में दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओ का आदर, प्राणियो की अहिंसा, ब्राह्मणो तथा श्रमणो को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पडते है। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, पडोसी को भी कहना चाहिए –"यह मगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। मै इसे (फिर) करूँगा।" दूसरे मगलाचार अनिश्चित फल वाले हैं। उनसे उद्देश्यकी सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले है। पर धर्म का मगलाचार सब काल के लिए है। इस धर्म के मगलाचार से इस लोक मे अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक मे प्राप्त हो सकता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मगलाचार से दो लाभ होते है अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

कालसी का दशम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश वा कीर्ति को बडी भारी वस्तु नही समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते है सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य मे (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते है। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं सो परलोक के लिए ही करते है, जिससे कि सब लोग दोष से रहित हो जाय। जो अपुण्य है वही दोष है। सब कुछ त्याग करके बडा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। बडे आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

कालसी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—कोई ऐसा दान नहीं जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा बटवारा नहीं जैसा कि) धर्म का बटवारा है, (कोई ऐसा सबन्ध नहीं जैसा कि) धर्म का सबन्ध है। धर्म मे यह होता है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिबन्धु, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय तथा प्राणियों की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए—"यह अच्छा कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है, वह इस लोक को सिद्ध करता है और परलोक मे भी उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

कालसी का बारहवा शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और सन्यासी सब सम्प्रदाय वालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (सम्प्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने सम्प्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा न करें। या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे सम्प्रदायों का आदर करना ही चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने सम्प्रदाय की (जड़) काटता है और दूसरे सम्प्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे सम्प्रदाय का गौरव बढ़े, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा करता है वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिये समवाय (परस्पर मेल-

जोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योकि देवताओ के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सव सप्रदाय वाले वहुश्रुत (भिन्न भिन्न सप्रदायो के सिद्धातो से परिचित) तथा कल्याण-दायक ज्ञान से युक्त हो। इसलिए जो लोग अपने अपने सप्रदायो मे ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओ के प्रिय दान या पूजा को इतना वडा नही समझते जितना इस वात को कि सव सप्रदायो के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त वहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य इसी प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त है। इसका फल यह है कि अपने सप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढता है।

कालसी का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष वाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ लाख मनुष्य (वन्दी बनाकर) देश से वाहर ले जाये गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुणा आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके वाद अव जवकि कलिंग-देश मिल गया है, देवताओ के प्रिय द्वारा धर्म का अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन तीव्र गति से हुआ है। कलिंग को जीतने पर देवताओ के प्रिय को वडा पश्चात्ताप हुआ। क्योकि जिस देश का पहले विजय नही हुआ है उस देश का विजय होने पर लोगो की हत्या, मृत्यु और देश-निष्कासन होता है। देवताओ के प्रिय को इससे वहुत दु ख और खेद हुआ। देवताओ के प्रिय को इस वात से और भी दु ख हुआ कि वहाँ व्राह्मण और श्रमण तथा अन्य सप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते है, जिनमें व्राह्मणो की सेवा, माता-पिता की सेवा, गुरुओ की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार और दृढ भक्ति पायी जाती है। ऐसे लोगो का विनाश, वध या प्रियजनो से वलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वय तो सुरक्षित होते है, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और सवधी विपत्ति में पड जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण वडी पीडा होती है। यह विपत्ति

सब के हिस्से में पड़ती है और इसने देवताओं के प्रिय को विशेष दुःख हुआ। यवनों के देश को छोड़कर कोई ऐसा देश नहीं जहाँ ये सम्प्रदाय न हों और उनमें ब्राह्मण और श्रमण न हों। कोई ऐसा जनपद नहीं जहाँ मनुष्य एक न एक सम्प्रदाय को न मानते हों। इसलिए कलिंग देश के विजय में उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या हर लिये गये उनके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। ... इच्छा करते हैं कि सब प्राणियों के साथ ... संयम, समान व्यवहार और नम्रता ... धर्म विजय को ही देवताओं के प्रिय ... । यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में बार बार प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक (सीरिया का राजा ऐन्टिओकस) के परे चार राजा अर्थात् तुलमय (मिश्र का राजा टालेमी), अन्तेकिन (मेसिडोनिया का राजा एन्टिगोनस गोनेटस), मका (साइरीनी का राजा मागस), और अलिक्यसुदल (एपिरस का राजा एलेक्जेन्डर) राज्य करते हैं (और) इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में), चोड़, पाड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ (राजा के राज्य में), यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभ-पन्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आंध्रों में और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर, धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय वास्तव में आनन्द को देने वाली है। धर्म-विजय से जो आनन्द मिलता है वह बहुत गाढ़ा आनन्द है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इस लिए यह धर्म-लेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पोते जो हों वे नया (देश) विजय करना अपना कर्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करना भी चाहें तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही यथार्थ में विजय मानना चाहिए। इससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। इसमें ही वे आनन्द प्राप्त करें। क्योंकि इससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

कालसी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। (यह लेख) कही सक्षेप में, कही मध्यम रूप मे और कही विस्तृत रूप मे है। क्योकि सब जगह सब लागू नही होता।[1] मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से लेख लिखवाये गये है और बहुत से लगातार लिखवाये जाएगे। कही कही विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, सक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

कालसी की चट्टान पर खुदे हुए हाथी के चित्र के नीचे चार अक्षरों वाला लेख

गजतम अर्थात् श्रेष्ठ हाथी

शाहबाजगढी में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमे हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योकि देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज मे बहुत से दोष देखते है। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) है जिन्हें देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते

---

१ कोई कोई इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये हैं।"

है। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जब कि यह धर्म लेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते हैं, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नहीं है। भविष्य में यह तीनों प्राणी भी नहीं मारे जायेंगे।

शाहबाजगढ़ी का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड़, पाड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी वहां तथा अन्तियोक नामक यवन-राज और जो उन अन्तियोक (सीरिया का राजा) के समीप सामन्त राजा हैं उन सबके देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहां-जहां नहीं थीं, वहां-वहां लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मनुष्यों और पशुओं के लाभ के लिए मूल और फल भी जहां-जहां नहीं थे वहां वहां, सब जगह लाये और रोपे गये हैं। पशुओं और मनुष्यों के लिए कुएं खुदवाये गये हैं।

शाहबाजगढ़ी का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पांच पांच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए सब जगह यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता-पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्र, परिचित, स्वजाति-

बान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है, जीव हिंसा न करना अच्छा है, थोडा व्यय और थोडा सचय करना अच्छा है।" (अमात्यो की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियो को आज्ञा देगी कि वे इन नियमो के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

शाहबाजगढी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षो से—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढता ही गया। पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाडे) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द मे बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षो से नही हुआ था वैसा आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओ का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढो की सेवा बढ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार का धर्माचरण बढा है। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढायेगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि मे लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

शाहबाजगढ़ी का पंचम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये हैं। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो सन्तानें होंगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोड़ा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योंकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल में धर्ममहामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सम्प्रदायों के बीच धर्म में रत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पीतिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए, तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच, धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो टोना, भूत प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं, उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं या बहुत वृद्ध हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्ममहामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशों में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

शाहबाजगढी का षष्ठ शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —अतीत काल में पहले वरावर हर समय राज्य का काम नही होता था और न हर समय प्रतिवेदको (गुप्तचरो) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैने यह (प्रवन्ध) किया है कि हर समय चाहे मै खाता होऊ या अन्त पुर में होऊ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊ या टहलता होऊ या सवारी पर होऊ या कूच कर रहा होऊ, सव जगह सव समय प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावे। मै प्रजा का काम सव जगह करता हूँ। यदि मै स्वय अपने मुख से आज्ञा दू कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रो को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और यदि उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मन्त्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे, तो मैने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घडी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योकि मै कितना ही परिश्रम करू और कितना ही राज-कार्य करू मुझे सतोष नही होता। क्योकि सव लोगो का हित करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ। पर सव लोगो का हित करने से वढकर कोई वडा कार्य नही है। जो कुछ पराक्रम मै करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियो के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊ और इस लोक मे लोगो को सुखी करू तथा परलोक मे उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊ। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र तथा नाती पोते सव लोगो के हित के लिए पराक्रम करें। पर वहुत अधिक पराक्रम के विना यह कार्य कठिन है।

शाहबाजगढी का सप्तम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते है कि सव जगह सव सप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें, क्योकि सव सप्रदाय सयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न —ऊची या नीची, अच्छी या वुरी होती है। वे या तो सपूर्ण रूप से या केवल आशिक रूप से

शाहबाजगढ़ी का सप्तम शिलालेख जो खरोष्ठी अक्षरों में है और दांई ओर से बाईं ओर को पढ़ा जाता है।

१. देवनं प्रियो प्रियशि रज सव्रत्र इछति सव्र

२. प्रषड वसेयु सवे हि ते सयमे भवशुधि च इछन्ति

३ जनो चु उचवुचछंदो उचवुचरगो ते सव्रं एकदेशं व

४ पि कशति विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव

५. शुधि किटनत द्रिढभतित निचे पढ

रुम्मिनदेई के स्तम्भ पर खुदा हुआ यह लेख ब्राह्मी अक्षरों में है और बांई ओर से दाई ओर को पढ़ा जाता है।

१. देवान पियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन
२ अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्यमुनीति
३ सिलाविगडभीचा कालापित सिलायमे च उसपापिते
४. हिद भगव जातेति लुमिनिगामे उबलिके कट
५. अठभागिये च

[देखिए पृष्ठ ११५]

(अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें संयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़-भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

शाहबाजगढ़ी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल मे राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से संबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तबसे) धर्मयात्राओं (का प्रारम्भ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है —ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हे दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हे सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-सम्बन्धी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्म-यात्रा मे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारबार आनन्द लेते हैं।

शाहबाजगढ़ी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —लोग विपत्ति में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के गन्दे और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना

[1] कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं।—"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं, [illegible] है।

ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मगलाचार अल्प फल देने वाले होते हैं। पर धर्म का जो मगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मगलाचार में दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओका आदर, प्राणियो की अहिसा, श्रमणो और ब्राह्मणो को दान और इमी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पडते है। इस लिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पडोसी को भी कहना चाहिए—"यह मगलाचार अच्छा है, इसे तव तक करना चाहिए जव तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मै इसे फिर करता रहूगा।" दूसरे मगलाचार अनिश्चित फल देने वाले है। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले है। पर धर्म का मगलाचार सव काल के लिए है। इस धर्म के मगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तव भी अनन्त पुण्य परलोक में प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मगलाचार मे दो लाभ होगे अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक मे अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

शाहबाजगढी का दशम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को वडी भारी वस्तु नही समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते है सो इसलिए कि वर्तमान और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। वस केवल इसीलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति को चाहते है। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते है सो परलोक के लिए ही करते है, जिसमें कि सव लोग दोष से रहित हो जाय। अपुण्य ही एक मात्र दोष है। सव कुछ त्याग करके वडा पराक्रम किये विना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या वडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। वडे आदमी के लिए तो

शाहबाजगढ़ी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —कोई ऐसा दान नही जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा परिचय नही जैसा कि) धर्म का परिचय है, (कोई ऐसा बटवारा नही, जैसा कि) धर्म का बटवारा है, (कोई ऐसा संबंध नही जैसा कि) धर्म का संबंध है । धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता-पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिबन्धु, श्रमणो और ब्राह्मणो को दान दिया जाय तथा प्राणियो की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए —"यह पुण्य कार्य है, इसे करना चाहिए ।" जो ऐसा करता है वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक मे उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है ।

शाहबाजगढ़ी का बारहवां शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब संप्रदायवालो का सत्कार करते है। किन्तु देवताओ के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नही करते जितनी इस बात की कि सब संप्रदायो के सार (तत्व) की वृद्धि हो । (संप्रदायो के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्संयम है अर्थात् लोग केवल अपने संप्रदाय का आदर और बिना कारण दूसरे संप्रदायो की निन्दा न करे। या विशेष अवसर पर निन्दा भी की जाय तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे संप्रदायो का आदर करना लोगो का कर्तव्य है। ऐसा करने से मनुष्य अपने संप्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे संप्रदायो का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने संप्रदाय को भी हानि पहुंचाता है और दूसरे संप्रदायो का भी अपकार करता है। क्योकि जो कोई अपने संप्रदाय की भक्ति से आकर इस विचार से कि मेरे संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे संप्रदायो की निन्दा करता है, वह वास्तव मे अपने संप्रदाय को ही गहरी हानि पहुंचाता है। इसलिए संयम ही अच्छा है अर्थात

लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुने और उमकी सेवा करें। क्योकि देवताओ के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि मव मप्रदाय वाले वहुश्रुत (भिन्न भिन्न सप्रदायो के सिद्धातो से परिचित) तथा कल्याणकारक ज्ञान मे युक्त हो। इमलिए जो लोग अपने अपने सप्रदाय मे ही अनुरक्त है उनमे कहना चाहिए कि देवताओ के प्रिय दान या पूजा को इतना वडा नही समझते जितना इम वात को कि सव सप्रदायो के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इम कार्य के निमित्त वहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य अनेक प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त है। इस का फल यह है कि अपने सप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव वढता है।

शाहबाजगढी का तेरहवा शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष वाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिग देश को विजय किया। वहां डेढ लाख मनुष्य (वन्दी वना कर देश से वाहर) ले जाये गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इमसे कई गुणा आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके वाद अव जव कि कलिग देश विजय हो गया है देवताओ के प्रिय द्वारा धर्म का तीव्र अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन अच्छी तरह हुआ है। कलिग जीतने पर देवताओ के प्रिय को वडा पश्चात्ताप हुआ। क्योकि जिस देश का पहले विजय नही हुआ है उस देश का विजय होने पर लोगो की हत्या, मृत्य और देश-निष्कासन होता है। देवताओ के प्रिय को इससे वहुत दु ख और खेद हुआ। देवताओ के प्रिय को इस वात से और भी दु ख हुआ कि वहां ब्राह्मण और श्रमण तथा अन्य मप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते है, जिनमें ब्राह्मणो की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरुओ की मेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार और दृढ भक्ति पायी जाती है। ऐसे लोगो का विनाश, वध या प्रियजनो से वलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वय तो सुरक्षित होते हैं, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और सम्वन्धी विपत्ति में फस जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण वडी पीडा होती है। यह विपत्ति सवके हिस्से में पडती है और इस से देवताओ के प्रिय को विशेप दु ख हुआ। कोई ऐसा देश नही जहां लोग

कोई न कोई सम्प्रदाय को न मानते हों। इसलिए कलिंग देश के विजय में उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या देश से निष्कासित हुए उनके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। (अब तो) कोई देवताओं के प्रिय का अपकार भी करे तो वे उसे, यदि वह क्षमा के योग्य है तो, क्षमा कर देंगे। देवताओं के प्रिय के राज्य में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हें धर्म में लाने का यत्न करते हैं। क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होता है। यह देवताओं के प्रिय का प्रभाव (महत्त्व) है। उन लोगों से वह कहते हैं कि वे (बुरे मार्ग पर चलने से) लज्जित हों जिससे कि मृत्युदण्ड से बचे रहें। देवताओं के प्रिय चाहते हैं कि सब प्राणियों के साथ अहिंसा, संयम, समानता और (मृदुता) का व्यवहार किया जाय। धर्म-विजय को ही देवताओं के प्रिय सबसे मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा ६ सौ योजन दूर उन सब सीमा-वर्ती राज्यों में प्राप्त की है, जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक राजा के परे चार राजा अर्थात् तुरमय, अन्तिकिनि, मक और अलिकसुन्दर राज्य करते हैं (और) इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड़, पाण्ड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ राजा के राज्य में, यवनों में, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभपन्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आन्ध्रों में और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहाँ जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच पाते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुन कर धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है—बार बार विजय हुई है—वह सर्वत्र से आनन्द की देने वाली है। धर्म की विजय से (अपार) आनन्द मिलता है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया है कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय करना अपना कर्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करें भी तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही असली विजय मानना चाहिए। उससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो। क्योंकि इससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

शाहबाज़गढ़ी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्म-लेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये हैं। (यह धर्म-लेख) कही सक्षेप में और कही विस्तृत रूप में हैं। क्योकि सब जगह सब लागू नही होता।[1] मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से लेख लिखवाये गये हैं और बहुत से लिखवाये जायेंगे। कही कही विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख मे (जो) कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, सक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

मानसेहरा में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते हैं। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) हैं जिन्हे देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते हैं। पहले देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रति-दिन कई हज़ार जीव सूप (शोरवा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना निश्चित नही है। भविष्य में यह तीनो प्राणी भी नही मारे जायेंगे।

---

१ किसी किसी ने इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार किया है —"सब जगह सब बाते या सब लेख नहीं लिखे गये है।"

माननेहरा का द्वितीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोड, पाड्य, सतियपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी वहाँ तथा अन्तियोक नामक यवनराजा और जो उस अन्तियोक (सीरिया का राजा) के समीप सामन्त राजा हैं, उन सब के देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है—एक मनुष्यों की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओं की चिकित्सा के लिए। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओं के लिए जहां जहां नहीं थीं वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहां जहां नहीं थे वहां वहां सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुएं खुदवाये गये हैं।

मानसेहरा का तृतीय शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राज-कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर इसी काम के लिए, अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामों के लिए यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजातिबान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है, जीवहिंसा न करना अच्छा है; थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यों की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियों को आज्ञा देगी कि वे इन नियमों के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार आज्ञा पालन करें।

मानसेहरा का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल में—कई सौ वर्षों मे—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढता ही गया। पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाडे) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द मे बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षो से नही हुआ था वैसा आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढो की सेवा बढ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार के धर्माचरण बढे हैं। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढायेंगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य मे यह लिखा गया। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

मानसेहरा का पचम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये है। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योकि पाप

करना आसान है। पूर्वकाल में धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नहीं होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सम्प्रदायों के बीच धर्म में रत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियों) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धों के बीच, धर्म में अनुरक्त जनों के हित और सुख के लिए तथा (सांसारिक) लोभ और लालसा की बेड़ी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेड़ी से जकड़े हुओं को छुड़ाने के लिए और जो टोना, भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से पीड़ित हैं उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगों का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त हैं जो बड़े परिवार वाले हैं तथा वृद्ध हैं। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में सब जगह हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्ममहामात्र मेरे राज्य में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया है कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

मानसेहरा का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय खाते में खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भागार (शयनगृह) में होऊं या [illegible] होऊं या सवारी पर होऊं या [illegible] होऊं, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूं।

मानसेहरा का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल मे—कई सौ वर्षों मे—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढता ही गया। पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाडे) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द मे बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षों से नही हुआ था वैसा आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओ का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का आदर, माता पिता की सेवा तथा बूढो की सेवा बढ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार के धर्माचरण बढे है। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढायेंगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगे और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

मानसेहरा का पचम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैने बहुत से अच्छे काम किये है। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्त्तव्य) का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योकि पाप

करना आसान है। पूर्वकाल मे धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नही होते थे। पर मैने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सम्प्रदायो के बीच धर्म मे रत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियो) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त है। वे स्वामी और सेवको, ब्राह्मणो और धनवानो, अनाथो और वृद्धो के बीच, धर्म मे अनुरक्त जनो के हित और सुख के लिए तथा (सासारिक) लोभ और लालसा की बेडी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त है। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेडी से जकडे हुओ को छुडाने के लिए और जो टोना, भूत-प्रेत आदि की बाधाओ से पीडित है उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगो का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त है जो बडे परिवार वाले है तथा वृद्ध है। ये पाटलिपुत्र मे और बाहर के नगरो मे सब जगह हमारे भाइयो, बहिनो तथा दूसरे रिश्तेदारो के अन्त पुरो मे नियुक्त है। ये धर्ममहामात्र मेरे राज्य मे सब जगह धर्मानुरागी लोगो के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त है कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते है, धर्म मे उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने मे वे कितनी रुचि रखते है। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया है कि यह बहुत दिनो तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

मानसेहरा का षष्ठ शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अतीत काल मे पहले बराबर न समय राज्य का काम होता था और न हर समय प्रतिवेदको (गुप्तचरो) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मै खाता होऊ या अन्त पुर मे होऊ या गर्भागार (शयनगृह) मे होऊ या [illegible] मे होऊ या सवारी पर होऊ या चल कर रहा होऊ, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावे। मै प्रजा का काम सब जगह करता हूँ।

यदि मै स्वय अपने मुख से आज्ञा दू कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रो को कोई आवश्यक भार सौपा जाय और उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मन्त्रिपरिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मैने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घडी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योकि मै कितना ही परिश्रम करू और कितना ही राजकार्य करू मुझे सतोष नही होता। क्योकि सब लोगों का हित करना मै अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ। पर सब लोगो का हित, परिश्रम और राज-कार्य-सम्पादन के बिनानही हो सकता। सब लोगो का हित करने से बढकर कोई बडा कार्य नही है। जो कुछ पराक्रम मै करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियो के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊ और इस लोक मे लोगो को सुखी करू तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊ। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र, तथा नातीपोते सब लोगो के हित के लिए पराक्रम करे। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

मानसेहरा का सप्तम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते है कि सब जगह सब सप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योकि सब सप्रदाय सयम और चित्त की शुद्धि चाहते है। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रवृत्ति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊची या नीची अच्छी या बुरी होती है। वे या तो सपूर्णरूप से या केवल आशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नही कर सकता उसमें सयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[1]

---

१ कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं —"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें सयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

मानसेहरा का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओं में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जबसे सम्बोधि (अर्थात ज्ञानप्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) धर्म-यात्राओं (का प्रारम्भ हुआ)। इन धर्म-यात्राओं में यह होता है—ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और उचित धर्म-सम्बन्धी चर्चा करना। इस समय से अन्य (आमोद प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते हैं।

मानसेहरा का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं— लोग विपत्ति में, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियां अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। पर धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पड़ते हैं। इसलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पड़ोसी को भी कहना चाहिए—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मैं इसे फिर करता रहूंगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर

धर्म का मगलाचार सब काल के लिए है। इस धर्म के मगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक मे अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मगलाचार से दो लाभ होंगे अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

मानसेहरा का दशम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को बडी भारी वस्तु नही समझते। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते है सो इसलिए कि वर्तमान मे और भविष्य में (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने मे उत्साहित हो। बस केवल इसीलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति को चाहते है। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते है सो परलोक के लिए ही करते हैं, जिसमें कि सब लोग दोप से रहित हो जाय। अपुण्य ही एकमात्र दोप है। सब कुछ त्याग करके बडा पराक्रम किये विना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। बडे आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

मानसेहरा का ग्यारहवा शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —कोई ऐसा दान नही जैसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसा परिचय नही जैसा कि) धर्म का परिचय है, (कोई ऐसा बटवारा नही जैसा कि) धर्म का बटवारा है, (कोई ऐसा सम्वन्ध नही जैसा कि) धर्म का सम्वन्ध है। धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित,

जातिवन्ध, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान दिया जाय तथा प्राणियों की हिंसा न की जाय। इनके लिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, तथा पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए —"यह पुण्य कार्य है, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक में भी उस धर्मदान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

मानसेहरा का बारहवां शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और संन्यासी सब सम्प्रदायवालों का सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (सम्प्रदायों के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने सम्प्रदाय का आदर और बिना कारण दूसरे सम्प्रदायों की निंदा न करें। या विशेष अवसर पर निन्दा भी की जाय तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे सम्प्रदायों का आदर करना लोगों का कर्तव्य है। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने सम्प्रदाय को भी हानि पहुँचाता है और दूसरे सम्प्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे सम्प्रदाय का गौरव बढ़े, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिए समवाय (परस्पर मेलजोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब सम्प्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से अवगत) तथा कल्याणकारक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने सम्प्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को उतना बड़ा नहीं समझते जितना इस

दान को कि सब सम्प्रदायो के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य अनेक प्रकार के राज-कर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने सम्प्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढता है।

मानसेहरा का तेरहवां शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ लाख मनुष्य मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग देश विजय हो गया है, देवताओ के प्रिय द्वारा धर्म का तीव्र अध्ययन, धर्म का अनुशासन मृत्यु और देश-निष्कासन होता है। देवताओ के प्रिय को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ। इस बात से और भी जिनमें ब्राह्मणो की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरुओ की सेवा, मित्र, परिचित वध या प्रियजनो से बलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वय तो सुरक्षित है, पर जिनके मित्र उन्हे भी अत्यन्त स्नेह के कारण देवताओ के प्रिय को विशेष दुःख होता है। यवनो के देश को छोडकर कोई देश ऐसा नही जहाँ लोग ब्राह्मण, श्रमण आदि भिन्न-भिन्न वर्गों में न विभक्त हो। इस जनपद में भी । इसलिए कलिंग देश के विजय में जितने आदमी मारे गये या देश से निष्कासित हुए उनके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओ के प्रिय को बडे दुःख का कारण होगा।
देवताओ के प्रिय के राज्य में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हे धर्म में लाने का यत्न करते है। क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होगा। देवताओ के प्रिय का यह प्रभाव है उन लोगो से वह कहते है धर्म-विजय को ही देवताओ के प्रिय सब से मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओ के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा ६ सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यो में प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है • मक और अलिकसुदर राज्य करते हैं और

इसी प्रकार अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड, पाड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ (राजा के राज्य मे) यवनो मे, कम्बोजो में, नाभको में, नाभपन्तियो में, भोजो मे, पितिनिकों में, आन्ध्रो मे · जहाँ जहाँ देवताओ के प्रिय के दूत नही पहुंच सकते वहाँ वहाँ भी लोग देवताओ के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते है और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है ·· देवताओ के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ा भारी (आनन्द की) वस्तु समझते है। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय ·····इससे यह लोक और परलोक दोनो बनता है। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो। क्योंकि इससे यह लोक और परलोक (दोनो सिद्ध होते है)।

मानसेहरा का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। · लिखवाये गये है और लिखवाये जायेंगे। कही कही विषय की रोचकता के कारण एक ही बात को बार बार कहा गया है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेख में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो
·· · · संक्षिप्त लेख ··· · · ·

येरागुडी मे चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योंकि देवताओ के प्रिय

प्रियदर्शी राजा ऐसे समाज (मेले, उत्सव) में बहुत से दोप देखते है। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) है जिन्हें देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा, अच्छा समझते है। पहले देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अब जबकि यह धमलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते है—दो मोर और एक मृग[1]। पर मृग का मारा जाना निश्चित नही है। यह तीनो प्राणी भी भविष्य में नही मारे जायेंगे।

येर्रागुडी का द्वितीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य मे सब जगह तथा जो सीमावर्ती राज्य है जैसे चोड, पाड्य, सत्यपुत्र, ताम्रपर्णी (लका) तक और अन्तियोक नामक यवनराज और जो उस अन्तियोक के समीप सामन्त राजा है, उन सबके देशो में देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है–एक मनुष्यो की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओ की चिकित्सा के लिए। औषधिया भी मनुष्यो और पशुओ के लिए जहाँ जहाँ नही थी, वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी है। इसी तरह से मूल और फल भी जहाँ जहाँ नही थे वहाँ वहाँ सब जगह लाये और रोपे गये है। मार्गों में पशुओ और मनुष्यो के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुँएँ खुदवाये गये हैं।

---

१ कोई कोई "मृग" को पशु तथा "मोर" को पक्षी के अर्थ में लेते हैं और इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते है —"पर अब जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव प्रतिदिन मारे जाते है, दो पक्षी और एक पशु।"

येर्रागुडी का तृतीय शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य मे सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पाच पाच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामो के लिए सब जगह (यह प्रचार करते हुए) दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है; मित्र, परिचित, स्वजाति वालो तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है, जीव-हिंसा न करना अच्छा है, थोड़ा व्यय करना और थोड़ा संचय करना अच्छा है।" (अमात्यो की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियो को आज्ञा देगी कि वे इन नियमो के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार उनका पालन करें।

येर्रागुडी का चतुर्थ शिलालेख

अतीत काल मे—कई सौ वर्षो से—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढ़ता ही गया। पर अब देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द मे बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा जैसा पहले कई सौ वर्षो से नही हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवों की रक्षा, बन्धुओं का आदर, ब्राह्मणो और श्रमणो का सत्कार, माता पिता की सेवा तथा बड़ो की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य बहुत प्रकार के धर्माचरण बढ़े हैं। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), परनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योंकि धर्म का अनुशासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नहीं है वह धर्म का आचरण भी नहीं कर सकता। इसलिए इस

(धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। (लोग) इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

येरगुडी का पचम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने में लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये है। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो सन्तानें होगी वे सब कल्प के अन्त तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे। किन्तु जो इस कर्त्तव्य का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल में धर्म-महामात्र नाम के राजकर्मचारी नही होते थे। पर मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये। ये धर्म-महामात्र सब सप्रदायो के बीच, धर्म में रत लोगो तथा यवन, काम्बोज, गान्धार राष्ट्रिक, पितिनिक और पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियो) के बीच धर्म की स्थापना, धर्म की वृद्धि तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त है। वे स्वामी और सेवको, ब्राह्मणो और धनवानो, अनाथो और वृद्धो के बीच धर्म में अनुरक्त जनो के हित और सुख के लिए तथा (सासारिक) लोभ और लालसा की बेडी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त हैं, वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेडी से जकडे हुओ को छुडाने के लिए और जो भूत-प्रेत आदि की बाधाओ से पीडित[1] है उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगो का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त है जो बडे परिवार वाले है या बहुत बुड्ढे है। वे यहाँ (पाटलिपुत्र) में और बाहर के नगरो में सब जगह हमारे भाइयो, बहिनो तथा दूसरे रिश्तेदारो के

---

१. "और जो भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से पीडित हैं" इसके स्थान पर कुछ लोगों ने यह अर्थ किया है —"और जिन्होंने किसी के उकसाने पर अपराध किया है।"

अन्तःपुरो में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे जीते हुए प्रदेशों में सब जगह धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितना प्रेम रखते हैं। यह धर्मलेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

येर्रागुडी का षष्ठ शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों)से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अन्तःपुर में होऊं या गर्भागार (शयनगृह) में होऊं या टहलता होऊं या सवारी पर होऊं या कूच कर रहा होऊं, सब जगह सब समय प्रतिवेदक (गुप्तचर) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूं। यदि मैं स्वयं अपने मुंह से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक आज्ञा दी जाय और यदि उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या मन्त्रिपरिषद् उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं मुझे संतोष नहीं होता। सब लोगों का हित करना मैं अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूं। पर सब लोगों का हित परिश्रम और राजकार्य-सम्पादन के बिना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं वह इसलिए कि प्राणियों के प्रति मेरा जो ऋण है उससे उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को सुखी करूं तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरस्थित रहे और मेरे पुत्र और पौत्र सब लोगों के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

येर्रागुडी का सप्तम शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते है कि सब जगह सब सप्रदाय के लोग (एक साथ) निवास करें। क्योकि सब सप्रदाय सयम और चित्त की शुद्धि चाहते है। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रवृत्ति और रुचि भिन्न भिन्न–ऊची या नीची, अच्छी या बुरी होती है। वे या तो सपूर्ण रूप से या केवल आशिक रूप से (अपने धर्म का पालन) करेगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नही कर सकता उसमें (कम से कम) सयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।*

येर्रागुडी का अष्टम शिलालेख

अतीत काल में राजा लोग विहार यात्रा के लिए निकलते थे। इन (विहार यात्राओ) मे मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद, जबसे सबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया, (तब से) इन धर्म-यात्राओ (का प्रारभ हुआ)। इन धर्म-यात्राओ में यह होता है —श्रमणो और ब्राह्मणो का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धो का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण दान देना, ग्राम-वासियो के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-सबधी चर्चा करना। उस समय से अन्य (आमोद प्रमोद) के स्थान पर इसी धर्म-यात्रा मे देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा बारबार आनन्द लेते हैं।

---

* कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं —"किन्तु, जो बहुत दान करता है पर जिसमें सयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति नही है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

येर्रागुडी का नवम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—लोग विपत्ति में, पुत्र तथा कन्या के विवाह में, पुत्र की उत्पत्ति में और इसी तरह के दूसरे (अवसरों पर) अनेक प्रकार के बहुत से ऊँचे और नीचे मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर स्त्रियाँ अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार तो करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मंगलाचार अल्पफल देने वाले होते हैं। परन्तु धर्म का जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मंगलाचार में दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा और श्रमणों तथा ब्राह्मणों को दान तथा इसी प्रकार के दूसरे मंगल कार्य होते हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित, पड़ोसी को भी कहना चाहिए :—"यह मंगलाचार अच्छा है, इसे तब तक करना चाहिए जब तक कि अभीष्ट कार्य की सिद्धि न हो। कार्य की सिद्धि हो जाने पर भी मैं इसे फिर करता रहूँगा।" दूसरे मंगलाचार अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो या न हो। वे इस लोक में ही फल देने वाले हैं। पर धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। यदि इस धर्म के मंगलाचार से इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति न भी हो, तब भी अनन्त पुण्य परलोक में उससे प्राप्त होता है। परन्तु यदि इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होते हैं अर्थात् इस लोक में अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि तथा परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

येर्रागुडी का दशम शिलालेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझते। (जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं वह इसलिए कि) वर्तमान में और भविष्य में मेरी प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। यश केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और

कीर्ति चाहते हैं। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते है सब परलोक के लिए करते है जिसमें कि सब लोग दोप से रहित हो जाय। जो अपुण्य ह वही दोप है। सब कुछ त्याग करके बडा पराक्रम किये विना, कोई भी मनुष्य, चाहे वह छोटा हो या बडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। वडे आदमी के लिए यह और भी कठिन ह।

येर्रागुडी का ग्यारहवां शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है—कोई ऐसा दान नही है जसा कि धर्म का दान है, (कोई ऐसी मित्रता नही जैसी कि) धर्म के द्वारा मित्रता है, (कोई ऐसा वटवारा नही जैसा कि) धर्म का वटवारा है, (कोई ऐसा सवन्ध नही जैसा कि) धर्म का सवन्ध है। धर्म यह है कि दास और सेवक के साथ उचित व्यवहार किया जाय, माता पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, जातिवालो तथा श्रमणो और ब्राह्मणो को दान दिया जाय और प्राणियो की हिंसा न की जाय। इसके लिए पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित तथा पडोसी को भी यह कहना चाहिए —"यह अच्छा कार्य ह, इसे करना चाहिए।" जो ऐसा करता है, वह इस लोक को भी सिद्ध करता है और परलोक में उस धम-दान से अनन्त पुण्य का भागी होता ह।

येर्रागुडी का वारहवां शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ और सन्यासी सव सम्प्रदाय वालो का सत्कार करते है। किन्तु देवताओ के प्रिय दान या पूजा की इतनी परवाह नही करते जितनी इस वात की कि सव सप्रदायो के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। (सप्रदायो के) सार की वृद्धि कई प्रकार से होती

है। पर उसकी जड़ वाक् संयम है अर्थात् लोग केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और बिना अवसर दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा न करें या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ। हर दशा में दूसरे सम्प्रदायों का आदर करना ही चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय की विशेष उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने सम्प्रदाय की (जड़) काटता है और दूसरे सम्प्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे सम्प्रदाय का गौरव बढ़े, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदायों की निन्दा करता है, वह ऐसा करके वास्तव में अपने सम्प्रदाय को ही गहरी हानि पहुँचाता है। इसलिए समवाय (परस्पर मेल-जोल से रहना) ही अच्छा है अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय की यह इच्छा है कि सब सम्प्रदाय वाले बहुश्रुत (भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से परिचित) तथा कल्याणदायक ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने अपने संप्रदायों में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना महत्व नहीं देते जितना इस बात को कि सब सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। इस कार्य के निमित्त बहुत से धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रजभूमिक तथा अन्य इसी प्रकार के राजकर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने सम्प्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

येर्रागुडी का तेरहवाँ शिलालेख

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया। वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य (बन्दी बना कर देश से बाहर) ले जाये गए, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुना आदमी (महामारी आदि से) मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग देश मिल गया है, देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन तीव्र गति से हुआ है। कलिंग को जीतने पर देवताओं के प्रिय को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। क्योंकि

जिस देश का पहले विजय नही हुआ है उस देश का विजय होने पर, लोगो की हत्या, मृत्यु और देश-निष्कासन होता ह। देवताओ के प्रिय को इससे वहुत दुख और खेद हुआ। देवताओ के प्रिय को इस वात से और भी दुख हुआ कि वहाँ ब्राह्मण और श्रमण तथा अन्य सप्रदाय के लोग और गृहस्थ रहते है, जिनमें ब्राह्मणो की सेवा , माता पिता की सेवा, गुरुओ की सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, जाति, दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार और दृढ भक्ति पायी जाती है, ऐसे लोगो का विनाश, वध या प्रियजनो से वलात् वियोग होता है। अथवा जो स्वय तो सुरिक्षत होते है, पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और सवन्धी विपत्ति में पड जाते हैं, उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण वडी पीडा होती है। यह विपत्ति सव के हिस्से में पडती है और इससे देवताओ के प्रिय को विशेप दुख हुआ। यवनो के देश को छोडकर कोई ऐसा देश नही जहाँ ये सप्रदाय न हो और उनमें ब्राह्मण और श्रमण न हो। कोई ऐसा जनपद नही जहाँ मनुष्य एक न एक सप्रदाय को न मानते हो। इसलिए कलिंग देश के विजय में उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या हर लिये गये उनके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी अव देवताओ के प्रिय को वडे दुख का कारण होगा। अव तो कोई देवताओ के प्रिय का अपकार भी करे तो वे उसे, यदि वह क्षमा के योग्य है तो, क्षमा कर देंगे। देवताओ के प्रिय के जीते हुए प्रदेश में जितने वनवासी लोग हैं उनको भी वे सन्तुष्ट रखते हैं और उन्हे धर्म में लाने का यत्न करते है। क्योकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हे पश्चात्ताप होता है। (यह) देवताओ के प्रिय का प्रभाव (महत्व) है। वे उनसे कहते है कि वे (बुरे मार्ग पर चलने से) लज्जित हो, जिसमें कि मृत्यु-दण्ड से वचे रहे। देवताओ के प्रिय चाहते है कि सब प्राणियो के साथ अहिंसा, सयम, समानता और मृदुता का व्यवहार किया जाय। धर्म विजय को ही देवताओ के प्रिय सवसे मुख्य विजय मानते हैं। यह धर्म-विजय देवताओ के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छ सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यो में प्राप्त की है, जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक के परे चार राजा अर्थात् तुरमय, अन्तिकिनि, मक और अलिकसुदर नामक राजा राज्य करते है (और) अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोड, पाड्य, तथा ताम्रपर्णी (लका) तक (धर्म विजय प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ राजा के राज्य में, यवनो में, काम्वोजो में, नाभको में, नाभपक्तियों में, भोजो में, पितिनिको में, आध्रो में

और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहां जहां देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुंच सकते वहां वहां भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है—बार-बार विजय हुई है—वह वास्तव में आनन्द को देनेवाली है। धर्म की विजय में (अपार) आनन्द मिलता है। पर यह आनन्द तुच्छ वस्तु है। देवताओं के प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ी भारी (आनन्द की) वस्तु समझते हैं। इसलिए यह धर्मलेख लिखा गया कि मेरे पुत्र और पौत्र नया (देश) विजय करना अपना कर्त्तव्य न समझें। यदि वे कभी नया देश विजय करें भी तो क्षमा और दया से काम लेना चाहिए और धर्म-विजय को ही असली विजय मानना चाहिए। इससे यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। धर्म का प्रेम ही उनका (सबसे मुख्य) प्रेम हो, क्योंकि इससे यह लोक और परलोक (दोनों सिद्ध होते हैं)।

येरांगुडी का चौदहवां शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाया है। (यह लेख) कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में है। क्योंकि सब जगह के लिए सब बात लागू नहीं होती[1]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए बहुत से (लेख) लिखवाये गये हैं और बहुत से लगातार लिखवाये जायेंगे। कहीं कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार-बार कही गयी है, जिससे कि लोग उसके अनुसार आचरण करें। इन लेखों में जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण देश-भेद, संक्षिप्तता या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।

---

[1] डॉ. [illegible] इस प्रकार करते हैं—"[illegible] [illegible] लिखे गये हैं।"

धौली और जौगढ़ में चट्टान पर खुदे हुए चतुर्दश शिलालेख

प्रथम शिलालेख

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने खेपिंगल नामक पर्वत पर लिखवाया है। यहाँ (मेरे राज्य में) कोई जीव मार कर होम न किया जाय और समाज (मेला, उत्सव या गोष्ठी जिसमें हिंसा आदि होती हो) न किया जाय। क्योकि देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा (ऐसे) समाज में बहुत से दोष देखते है। परन्तु एक प्रकार के ऐसे समाज (मेले, उत्सव) है जिन्हें देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा अच्छा समझते है। पहले देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई हजार जीव सूप (शोरवा) बनाने के लिए मारे जाते थे। पर अव जबकि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है, केवल तीन ही जीव (प्रतिदिन) मारे जाते है, दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियत नही है। भविष्य मे यह तीनो प्राणी भी नही मारे जायेंगे।

द्वितीय शिलालेख
(धौली और जौगढ)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के जीते हुए प्रदेश में सब जगह तथा सीमावर्त्ती राज्य जैसे चोड, पाड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, (ताम्रपर्णी) में तथा अन्तियोक नामक यवन राजा और जो उस अन्तियोक (सीरिया के राजा) के पडोसी सामन्त राजा हैं, उन सबके देशो में देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रवन्ध किया है—एक मनुष्यो की चिकित्सा के लिए और दूसरा पशुओ की चिकित्सा के लिए। औपधिया भी मनुष्यो और पशुओ के लिए जहाँ जहाँ नही थी वहाँ वहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरह मूल और फल भी जहाँ जहाँ नही थे वहाँ वहाँ सव जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गों में मनुष्यो और पशुओ के आराम के लिए वृक्ष लगाये गये और कुएँ खुदवाये गये है।

तृतीय शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे राज्य में सब जगह युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक नामक राजकर्मचारी पाच पाच वर्ष पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म की शिक्षा देने के लिए तथा और और कामो के लिए यह प्रचार करते हुए दौरा करें कि "माता पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्र, परिचित, स्वजाति-बान्धव तथा ब्राह्मण और श्रमण को दान देना अच्छा है; जीव-हिंसा न करना अच्छा है, थोड़ा व्यय और थोड़ा सचय करना अच्छा है।" (अमात्यो की) परिषद् भी युक्त नामक कर्मचारियो को आज्ञा देगी कि वे इन नियमो के वास्तविक भाव और अक्षर के अनुसार इनका पालन करें।

चतुर्थ शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

अतीत काल मे—कई सौ वर्षो से—प्राणियो का वध, जीवो की हिंसा, बन्धुओ का अनादर तथा श्रमणो और ब्राह्मणो का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द धर्म की भेरी के शब्द में बदल गया है। देव-विमान, हाथी, (नरक-सूचक) अग्नि की ज्वाला और अन्य दिव्य दृश्यो के प्रदर्शनो द्वारा, जैसा पहले कई सौ वर्षो से नहीं हुआ था वैसा, आज देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्मानुशासन से प्राणियो की अहिंसा, जीवो की रक्षा, बन्धुओ का आदर, श्रमणो और ब्राह्मणो का आदर, माता पिता की सेवा तथा वृद्धो की सेवा बढ़ गयी है। यह तथा अन्य प्रकार के धर्माचरण बढ़े है। इस धर्माचरण को देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा और भी बढ़ायेंगे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, नाती (पोते), पनाती (परपोते) इस धर्माचरण को कल्प के अन्त तक बढ़ाते रहेंगे और धर्म तथा शील

का पालन करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे। क्योकि धर्म का अनु-शासन श्रेष्ठ कार्य है। जो शीलवान् नही है वह धर्म का आचरण भी नही कर सकता। इसलिए इस (धर्माचरण) की वृद्धि करना तथा इसकी हानि न होने देना अच्छा है। लोग इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होन दें इसी उद्देश्य से यह लिखा गया है। राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह लिखवाया।

पचम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं–अच्छा काम करना कठिन है। जो अच्छा काम करने मे लग जाता है वह कठिन काम करता है। पर मैंने बहुत से अच्छे काम किये है। इसलिए यदि मेरे पुत्र, नाती पोते और उनके बाद जो सताने होगी वे सब कल्प (के अन्त) तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस (कर्तव्य) का थोडा सा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा। क्योकि पाप करना आसान है। पूर्वकाल मे धर्म-महामात्र नामक राजकर्मचारी नही होते थे। पर मैने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्ष बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किये है। ये धर्म-महामात्र सब सम्प्रदायों के बीच धर्मरत यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली जातियो) के बीच धर्म की स्थापना और वृद्धि के लिए तथा उनके हित और सुख के लिए नियुक्त है। वे स्वामी और सेवको, ब्राह्मणो और धनवानो, अनाथो और वृद्धो के बीच, धर्म में अनुरक्त जनो के हित और सुख के लिए तथा सासारिक लोभ और लालसा की बेडी से उनको मुक्त करने के लिए नियुक्त है। वे (अन्यायपूर्ण) वध और बन्धन को रोकने के लिए, बेडी से जकडे हुओ को बेडी से मुक्त करने के लिए, और जो टोना, भूत प्रेत आदि की बाधाओ से पीडित है उनकी रक्षा के लिए तथा (उन लोगो का ध्यान रखने के लिए) नियुक्त है जो बडे परिवार वाले है वृद्ध है। वे पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरो में सब जगह हमारे भाइयो, तथा बहिनो तथा दूसरे

रिश्तेदारों के अन्तःपुरों में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र समस्त पृथ्वी में धर्मानुरागी लोगों के बीच (यह देखने के लिए) नियुक्त हैं कि वे धर्म का आचरण किस प्रकार करते हैं, धर्म में उनकी कितनी निष्ठा है और दान देने में वे कितनी रुचि रखते हैं। यह धर्म-लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि यह बहुत दिनों तक स्थित रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे।

षष्ठ शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (गुप्तचरों) से समाचार ही सुना जाता था। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊ या अन्तःपुर में होऊ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊ या टहलता होऊ या सवारी पर होऊ या कूच कर रहा होऊ, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ। यदि मैं स्वयं अपने मुख से आज्ञा दूँ (कि अमुक) दान दिया जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रों को कोई आवश्यक भार सौंपा जाय और उस विषय में कोई विवाद (मतभेद) उनमें उपस्थित हो या (मन्त्रि-परिषद्) उसे अस्वीकार करे तो मेरी आज्ञा यह है कि तुरन्त ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय। क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राज-कार्य करूँ मुझे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि सब लोगों का हित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। पर लोगों का हित परिश्रम और राज्यकार्य-सम्पादन के बिना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ सो इसलिए कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण हो जाऊँ और इस लोक में लोगों को सुखी करूँ तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊँ। यह धर्मलेख इसलिए लिखाया गया कि यह चिरकाल तक स्थित रहे और मेरे पुत्र तथा नाती पोते सब लोग

के हित के लिए पराक्रम करें। पर बहुत अधिक पराक्रम के बिना यह कार्य कठिन है।

सप्तम शिलालेख
(धौली और जौगढ)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते है कि सब जगह सब सप्रदाय के के लोग (एक साथ) निवास करे। क्योकि सब सप्रदाय सयम और चित्त की शुद्धि चाहते है। परन्तु भिन्न भिन्न मनुष्यो की प्रकृति तथा रुचि भिन्न भिन्न—ऊची या नीची, अच्छी या बुरी, होती है। वे या तो सपूर्ण रूप से या केवल आशिक रूप से अपने धर्म का पालन करेंगे। किन्तु जो बहुत अधिक दान नही कर सकता उसमे सयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ-भक्ति का होना नितान्त आवश्यक है।[१]

अष्टम शिलालेख
(धौली और जौगढ़)

अतीत काल में राजा लोग विहार-यात्रा के लिए निकलते थे। इन यात्राओ में मृगया (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। परन्तु देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद जब से सबोधि (अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के मार्ग) का अनुसरण किया (तब से) धर्मयात्राओ (का प्रारभ हुआ)। इन धर्म-यात्राओ में यह होता है —श्रमणो और ब्राह्मणो का

---

१ कोई कोई इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं —"किन्तु जो बहुत दान करता है, पर जिसमें सयम, चित्तशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ भक्ति नहीं है, वह अत्यन्त नीच या निकम्मा है।"

दर्शन करना और उन्हे दान देना, वृद्धो का दर्शन करना और उन्हें स्वर्ण दान देना, ग्रामवासियो के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और उनके साथ उचित धर्म-सम्वन्धी चर्चा करना । उस समय से अन्य (आमोद-प्रमोद के) स्थान पर इसी धर्म-यात्रा में देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा वारवार आनन्द लेते है।

नवम शिलालेख

(धौली और जौगढ़)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—लोग विपत्ति मे, पुत्र या कन्या के विवाह में, पुत्र के जन्म में, परदेश जाने के समय और इसी तरह के दूसरे (अवसरो पर) अनेक प्रकार के वहुत से मगलाचार करते है। ऐसे अवसरो पर स्त्रिया अनेक प्रकार के तुच्छ और निरर्थक मगलाचार करती है। मगलाचार करना ही चाहिए। किन्तु इस प्रकार के मगलाचार अल्पफल देने वाले होते है। पर धर्म का जो मगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस धर्म के मगलाचार में दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओ का आदर, प्राणियो की अहिंसा, श्रमणो और ब्राह्मणो को दान और इसी प्रकार के दूसरे (सत्कार्य) करने पडते है। इसीलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी को भी कहना चाहिए—"यह मगलाचार अच्छा है, इसे तव तक करना चाहिए जव तक कि अभीप्ट कार्य की सिद्धि न हो।" और ऐसा कहा गया है कि "दान देना अच्छा है।" पर कोई ऐसा दान और उपकार नही है जैसा कि धर्म का दान और धर्म का उपकार है। इसलिए मित्र, सहायक, जातिवन्धु को अवसर पर कहना चाहिए —"यह धर्म का दान पुण्य कार्य है। इससे स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है।" और स्वर्ग की प्राप्ति से वढकर इप्ट वस्तु क्या है ?

दशम शिलालेख

(धौली और जौगढ)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को वडी भारी वस्तु नही समझने। जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहते हैं सो इसलिए कि वर्तमान में और भविष्य मे (मेरी) प्रजा धर्म की सेवा करने और धर्म के व्रत को पालन करने में उत्साहित हो। वस केवल इसीलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति चाहते है। देवताओ के प्रिय जो भी पराक्रम करते है सो परलोक के लिए ही करते है, जिसमें कि सब दोष से रहित हो जायें। अपुण्य ही (एक मात्र दोष है)। सब कुछ त्याग करके बडा पराक्रम किये बिना, कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या वडा, इस (पुण्य) कार्य को नही कर सकता। वडे आदमी के लिए तो यह और भी कठिन है।

चौदहवा शिलालेख

(धौली और जौगढ़)

यह धर्मलेख देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाये है। (यह लेख) कही सक्षेप में, कही मध्यम रूप में और कही विस्तृत रूप में है। क्योकि सब जगह के लिए सब बातें लागू नही होनी[1]। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसलिए वहुत से लेख लिखवाये गये है और वहुत से लिखवाये जाएगे। कही कही विषय की रोचकता के कारण (एक ही बात बार बार) कही गयी है, जिसमें कि लोग उसके अनुसार आचरण करे। इस लेख मे जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो (उसका कारण देश-भेद, सक्षिप्त लेख या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिये)।

---

१ किसी किसी ने इस वाक्य का अर्थ किया है —"सब जगह सब बातें या सब लेख नहीं लिखे गये है।"

धौली में चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

देवताओ के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर मे महामात्रो से, जो उस नगर मे न्याय-शासन के अध्यक्ष है, यह कहना चाहिए —जो कुछ मै (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार कार्य करने की तथा उसे (भिन्न-भिन्न) उपायो से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगो के प्रति मेरी (यह) शिक्षा है आप लोग इसलिए कई सहस्र प्राणियो के ऊपर रखे गये है कि जिससे हम मनुष्यो का स्नेह प्राप्त करें। सव मनुष्य मेरे पुत्र है। जिस तरह मै चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सव प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करे उसी तरह मै चाहता हूँ कि सव मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सव तरह के हित और सुख को प्राप्त करे। पर आप लोग इस वात को पूरी तरह से नही समझते। कदाचित् एकाध व्यक्ति इस वात को समझते हो, पर वे भी केवल कुछ ही अशो में न कि पूर्ण अशो में समझते है। यद्यपि आप लोग भली भाति व्यवस्थित है, तव भी आप लोग इस वात पर ध्यान देवें। न्याय करने में कभी कभी ऐसा हो जाता है कि कोई व्यक्ति वन्दीगृह मे डाल दिया जाय या कठोर व्यवहार उसके साथ हो। उस दशा मे वन्दीगृह से छूटने की (आज्ञा) वह अकस्मात् प्राप्त कर ले, परन्तु वहुत से दूसरे (कैदी) वन्दीगृह में पडे हुए कष्ट पाते रहें। ऐसी दशा मे आप लोगो को (अत्यन्त कठोरता और अत्यन्त दया त्याग करके) मध्य पथ (निष्पक्ष न्याय का मार्ग) अवलम्वन करने की चेष्टा करनी चाहिए। पर वहुत सी ऐसी प्रवृत्तिया (दोष) है जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दवाजी, अभ्यास का अभाव, आलस्य और तन्द्रा, जिनके कारण मनुष्य कार्य मे सफल नही होता। आप लोगो को चेष्टा करनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तिया (दोष) आप लोगो में न आवें। इस सव का मूल है क्रोध का त्याग और जल्दवाजी न करना। जो न्याय के काम में आलस्य करेगा उसका उत्थान नही होगा। इस तरह चलना चाहिए और आगे वढकर प्रयत्न करना चाहिए। जो इस वात को समझेगा वह अवश्य आपसे कहेगा कि "राजा की अमुक आज्ञा है (अतएव उनकी आज्ञा पालन करके) राजा के प्रति जो तुम्हारा ऋण है उससे उऋण हो।" जो इसका पालन करेगा उसको वडा फल मिलेगा। पालन न करने से वडी विपत्ति होती है। जो इसमे चूकते है वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते है और न राजा को प्रसन्न कर सकते है। कोई इस कार्य को वुरी तरह से

करेगा तो मेरा मन कैसे प्रसन्न होगा ? यदि आप इसका पूरी तरह से पालन करेंगे तो मेरे प्रति जो आपका ऋण है उससे आप उऋण हो जायेंगे और स्वर्ग प्राप्त करेंगे। इस लेख को प्रत्येक पुष्य नक्षत्र के दिन सबो को सुनना चाहिए। बीच बीच में उपयुक्त अवसर पर अकेले एक को भी इसे सुनना चाहिए। इस तरह करते हुए आप मेरा आदेश पालन करने की चेष्टा करें। यह लेख इसलिए लिखा गया कि नगर-व्यावहारिक (नगर-शासक) नामक राजकर्मचारी सदा इस बात का प्रयत्न करें कि (नगर-निवासियो को) अकारण बन्धन या अकारण दण्ड न हो। और इसलिए मै धर्मानुसार पाच पाच वर्ष पर ऐसे (कर्मचारियो को) जो नरम, क्रोध-रहित और दयालु होगे, यह जानने के लिए भेजा करूगा कि (नगर-व्यावहारिक लोग) इस बात की ओर समुचित ध्यान देते हैं या नही और मेरे आदेश के अनुसार चलते है या नहीं। उज्जयिनी से भी कुमार (गवर्नर) इसी कार्य के लिए इसी प्रकार कर्मचारियो को तीन तीन वर्ष पर भेजेंगे, पर तीन वर्ष से अधिक का अन्तर न देंगे। तक्षशिला के लिए भी यही आज्ञा है। जब उक्त महामात्र (कर्मचारीगण) दौरे पर निकलेंगे तो अपने साधारण कार्यो को करते हुए इस बात का भी पता चलायेंगे कि नगर-व्यावहारिक (नगर-शासक) लोग राजा के आदेश के अनुसार कार्य करते है या नहीं।

धौली का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

देवताओ के प्रिय की आज्ञा से तोसली नगर में कुमार (गवर्नर) को तथा महामात्रो से यह कहना चाहिए—जो कुछ मैं (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत मे इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगो के प्रति . जिस तरह मे चाहता हूँ कि मेरे पुत्र ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख प्राप्त करें उसी तरह जो सीमान्त जातिया नही जीती गयी है वे कदाचित् (यह जानना चाहें) कि हम लोगो के प्रति राजा की क्या आज्ञा है तो सीमान्त जातियो के प्रति मै चाहता हूँ कि वे यह जानें कि देवताओ के प्रिय वे

मुझ से न डरें, मुझ पर विश्वास करें, मुझ से सुख ही प्राप्त करें, कभी दु:ख न पावें। वे यह भी विश्वास रखें कि जहाँ तक क्षमा का व्यवहार हो सकता है वहाँ तक राजा हम लोगो के साथ क्षमा का वर्ताव करेंगे। मेरे निमित्त वे धर्म का अनुसरण करें जिससे कि उनका यह लोक और परलोक दोनो वनें। इस उद्देश्य के लिए में आप लोगो को (राज कर्मचारियो को) शिक्षा देता हूँ कि इससे (उनके प्रति जो मेरा ऋण है उससे) मै उऋण हो जाऊँ और आप लोगो को अनुशासन देता हूँ तथा सूचित करता हूँ कि (इस सम्वन्ध में) मेरा यह अटल निश्चय तथा दृढ प्रतिज्ञा है। अतएव इस शिक्षा के अनुसार चलते हुए आप लोगो को अपना कर्त्तव्य करना चाहिए और सीमान्त जातियो मे ऐसा भरोसा पैदा करना चाहिए कि जिसमें वे यह समझें कि "देवताओ के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही है जैसे कि पिता, वे हम पर वैसा ही प्रेम रखते है जैसा कि अपने ऊपर और हम लोग राजा के वैसे ही है जैसेकि उनके लडके।" अतएव आप लोगो को शिक्षा देने तथा अपना दृढ निश्चय सूचित करने के वाद मे यह अनुभव करता हूँ कि मेरे इस उद्देश्य का प्रचार देशव्यापी हो जायगा। आप सीमान्त जातियो मे मेरे ऊपर विश्वास उत्पन्न करा सकते है और इस लोक तथा परलोक में उनके हित और सुख का सम्पादन करा सकते हैं। इस प्रकार करते हुए आप लोग स्वर्ग का लाभ कर सकते हैं और मेरे प्रति आप लोगो का जो ऋण है उससे उऋण हो सकते हैं। यह लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि महामात्र लोग सीमान्त जातियो में विश्वास पैदा करने के लिए तथा उन्हें धर्म-मार्ग पर चलाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। इस लेख को प्रति चातुर्मास्य अर्थात् चार चार मास पर पुष्य नक्षत्र के दिन सुनना चाहिए। यदि चाहें तो हर एक को अकेले भी अवसर अवसर पर सुनना चाहिए। ऐसा करते हुए आप लोग (मेरी आज्ञा पालन करने का) प्रयत्न करें।

जौगढ मे चट्टान पर खुदा हुआ प्रथम अतिरिक्त शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते हैं —समापा मे महामात्रो से, जो उस नगर में न्याय-शासन के अध्यक्ष है, यह कहना चाहिए कि जो कुछ मै (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार कार्य करने की तथा उसको (भिन्न भिन्न) उपायो से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मन मे इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगो को मेरी (यह) शिक्षा है आप लोग इसलिए कई सहस्र प्राणियो के ऊपर रखे गये हैं कि जिससे हम मनुष्यो का स्नेह प्राप्त करें। सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस तरह मै चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करें, उसी तरह मै चाहता हूँ सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें। पर आप लोग इस बात को पूरी तरह से नही समझते। कदाचित् एकाध व्यक्ति इस बात को समझते हो, पर वे भी केवल कुछ अशो में समझते है। यद्यपि आप लोग भली भाति व्यवस्थित है, तब भी आप लोग इस बात पर ध्यान देवे। प्राय ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति वन्दीगृह में छोड दिया जाये या कठोर व्यवहार उसके साथ हो। उस दशा में वन्दीगृह से छूटने की (आज्ञा) वह अकस्मात् प्राप्त कर ले, परन्तु बहुत से दूसरे (कैदी) वन्दीगृह में पडे हुए कष्ट पाते रहें। ऐसी दशा में आप लोगो को (अत्यन्त कठोरता और अत्यन्त दया त्याग करके) मध्य पथ (निष्पक्ष न्याय का मार्ग) अवलम्बन करने की चेष्टा करनी चाहिए। पर बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियाँ (दोष) हैं जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अभ्यास का अभाव, आलस्य और तन्द्रा जिनके कारण मनुष्य कार्य में सफल नही होता। आप लोगो को चेष्टा करनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तियाँ (दोष) आप लोगो मे न आवे। इन सब का मूल है क्रोध का त्याग और जल्दबाजी न करना। जो न्याय के काम मे आलस्य करेगा उसका उत्थान नही होगा। अतएव (न्याय के काम में) आगे चलना और बढ़ना चाहिए। जो इस बात की ओर ध्यान देगा वह अवश्य आप से कहेगा कि "देवताओं के प्रिय की अमुक आज्ञा है (अतएव उनकी आज्ञा का पालन करके) राजा के प्रति जो तुम्हारा ऋण है उससे उऋण हो।" जो इसका पालन करेगा उसको बडा फल मिलेगा। पालन न करने से बडी विपत्ति होती है। जो इसमें चूकते है वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और न राजा को प्रसन्न कर

सकते हैं। कोई इस कार्य को वुरी तरह से करेगा तो मेरा मन कैसे प्रसन्न होगा? यदि आप इसका पूरी तरह से पालन करेंगे तो मेरे प्रति जो आपका ऋण है उसमे आप उऋण हो जायेंगे और स्वर्ग प्राप्त करेंगे। इस लेख को प्रत्येक पुष्य नक्षत्र के दिन सवो को सुनना चाहिए। वीच वीच में उपयुक्त अवसर पर अकेले एक को भी इसे सुनना चाहिए। चेष्टा करें यह लेख इसलिए लिखा गया कि महामात्र (नगर-शासक) सदा इस वात का प्रयत्न करे कि (नगरवासियो को) अकारण वन्वन या अकारण दण्ड न हो। मैं पाँच पाँच वर्ष पर ऐसे महामात्र को जो नरम और दयालु होगा भेजा करूँगा · कुमार (गवर्नर) भी (भेजेंगे) तक्षशिला से जव राजा के आदेश के अनुसार वे दौरे पर निकलेंगे तो अपने सावारण कार्यों को करते हुए (इस वात का भी पता लगायेंगे कि नगर-व्यावहारिक) राजा के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं या नही।

जौगढ का द्वितीय अतिरिक्त शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है—समापा में महामात्रो से राजा की ओर से यह कहना चाहिए—जो कुछ मै (उचित) समझता हूँ उसके अनुसार मैं कार्य करने की तथा उसको (भिन्न भिन्न) उपायो से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ। मेरे मत में इस कार्य को पूरा करने का मुख्य उपाय आप लोगो को मेरी (यह) शिक्षा है—सव मनुष्य मेरे पुत्र है। जिस तरह मै चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सव प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करे, उसी तरह मै चाहता हूँ कि सव मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सव तरह के हित और सुख को प्राप्त करें। जो सीमान्त जातिया नही जीती गयी है वे कदाचित् (यह जानना चाहें) कि हम लोगो के प्रति राजा की क्या आज्ञा है, तो सीमान्त जातियो के प्रति मै यह चाहता हूँ कि वे यह जानें कि देवताओ के प्रिय की इच्छा है कि वे मुझसे न डरें मुझ पर विश्वास करे, मुझसे सुख की प्राप्ति करें, कभी दुख न पाव। वे यह भी विश्वास रक्खें कि जहाँ तक क्षमा का व्यवहार हो सकता है वहाँ तक राजा हम

लोगो के साथ क्षमा का व्यवहार करेंगे। मेरे निमित्त वे धर्म का अनुसरण करें जिसमें कि उनका यह लोक और परलोक दोनो बनें। इस उद्देश्य के लिए मै आप लोगो (राजकर्मचारियो को) शिक्षा देता हूँ कि उससे (उनके प्रति जो मेरा ऋण है उससे) मै उऋण हो जाऊ और आप लोगो को अनुशासन देता हूँ तथा सूचित करता हूँ कि (इस सम्बन्ध में) मेरा अटल निश्चय तथा दृढ प्रतिज्ञा है। अतएव इस शिक्षा के अनुसार चलते हुए आप लोगो को अपना कर्त्तव्य करना चाहिए और सीमान्त जातियो में ऐसा भरोसा पैदा करना चाहिए कि जिससे वे यह समझें कि "देवताओ के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही है जैसे कि पिता, वे हम पर वैसा ही प्रेम रखते हैं जैसा कि अपने ऊपर और हम लोग राजा के वैसे ही हैं जैसे कि उनके लडके।" अतएव आप लोगो को शिक्षा देने तथा अपना अटल निश्चय और दृढ प्रतिज्ञा सूचित करने के बाद मै यह अनुभव करता हूँ कि मेरे इस उद्देश्य का प्रचार देशव्यापी हो जायेगा। आप सीमान्त जातियों में *मेरे ऊपर विश्वास उत्पन्न करा सकते है और इस लोक तथा परलोक में उनके* हित और सुख का सम्पादन करा सकते है। इस प्रकार करते हुए आप लोग स्वर्ग का लाभ कर सकते हैं और मेरे प्रति आप लोगो का जो ऋण है उससे उऋण हो सकते हैं। यह लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि महामात्र लोग सीमान्त जातियो में विश्वास पैदा करने के लिए तथा उन्हे धर्म-मार्ग पर चलाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। इस लेख को प्रति चातुर्मास्य अर्थात चार चार मास पर पुष्य नक्षत्र के दिन सुनना चाहिए, बीच बीच में भी सुनना चाहिए। जब अवसर हो तब हर एक हो अकेले भी सुनना चाहिए। ऐसा करते हुए आप लोग (मेरी आज्ञा पालन करने का) प्रयत्न करें।

स्तम्भों पर खुदे हुए लेख

(प्रथम से लेकर षष्ठ स्तम्भलेख दिल्ली-टोपरा, दिल्ली-मेरठ, इलाहाबाद-कोसम, लौड़िया-अरराज, लौड़िया-नन्दनगढ और रामपुरवा के स्तम्भों पर मिलते हैं। सप्तम स्तम्भलेख केवल दिल्ली-टोपरा के स्तम्भ पर ही मिलता है)

दिल्ली-टोपरा के सप्त स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के बिना, विशेष आत्म-परीक्षा के विना, बडी सेवा के विना, पाप से बडे भय के बिना और महान् उत्साह के विना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगो का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढा है तथा आगे और भी बढेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊचे पद पर हो या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते है कि चचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हो। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धात) है।

दिल्ली-टोपरा का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे; दया,

दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है। दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर जीवो पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी वहुत मे कल्याण के काम मैंने किये हैं। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

दिल्ली-टोपरा का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोप मुझ मे है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और उनके सवव से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस वात की ओर विशेप रूप मे ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी वनेगा।

दिल्ली-टोपरा का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिपेक के २६ वर्प वाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखो मनुष्यो के ऊपर नियुक्त है। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिसमें कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगो के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगो पर अनुग्रह करें। वे (लोगो

के) सुख और दु ख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषो के द्वारा लोगो को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे लोग इस लोक मे और परलोक मे दोनो जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करे। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ मे सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगो को हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये है। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मै चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नही हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पड़े हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। इस बीच मे (अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगो को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवनदान के लिए (रज्जुको से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे, क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागार मे रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, सयम और दान करने की इच्छा लोगो में बढे।

दिल्ली-टोपरा का पंचम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित प्राणियो का वध करना वर्जित कर दिया है —सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड), अबाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गगापुपुटक,

(हित और सुख को) मै ध्यान में रखता हूँ। मैंने सव पाषण्डो (सप्रदायो) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वय (लोगो के पास) जाना—यह मैं (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया।

दिल्ली-टोपरा का सप्तम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —अतीत काल में जो राजा हुए उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार लोगो मे धर्म की वृद्धि हो। पर लोगो में आशा के अनुकूल धर्म की वृद्धि नही हुई।

इसलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —यह विचार मेरे मन में हुआ कि पूर्व समय में राजा लोग यह चाहते थे कि किसी प्रकार लोगो में उचित रूप से धर्म की वृद्धि हो, पर लोगो में यथेष्ठ धर्म की वृद्धि नही हुई। तो अव किस प्रकार से लोगो को (धर्म-पालन में) प्रवृत्त किया जाय? किस प्रकार लोगो में यथोचित धर्म की वृद्धि की जाय? किस प्रकार धर्म की वृद्धि से मै उन्हें उन्नत कर सकू?

इसलिए देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —यह विचार मेरे मन में हुआ कि लोगो को धर्म-श्रवण कराऊ और धर्म का उपदेश दू, जिसमें कि लोग उसे सुनकर उसी के अनुसार आचरण करें, उन्नति करे और विशेष रूप से धर्म की वृद्धि करें। इसी उद्देश्य से धर्म-श्रवण कराया गया और विविध प्रकार से धर्म का उपदेश दिया गया, जिसमें कि मेरे "पुरुष" नामक कर्मचारी जो वहुत से लोगो के ऊपर नियुक्त है, मेरे उपदेशो का प्रचार और विस्तार करे। रज्जुको को भी, जो लाखो मनुष्यो के ऊपर नियुक्त है, यह आज्ञा दी गयी है कि धर्म-प्रेमी लोगो को इसी प्रकार उपदेश करें।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर मैंने धर्मस्तम्भ वनवाये, धर्ममहामात्र नियुक्त किये और धर्म की घोषणायें निकाली।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —सडको पर भी मैने मनुष्यो और पशुओ को छाया देने के लिए वरगद के पेड लगवाये, आम के पेडो की वाटिकाए लगवायी, आठ आठ कोस पर कुएँ खुदवाये, सरायें वनवायी और जहाँ-तहाँ पशुओ तथा मनुष्यो के उपकार के लिए अनेक पौंसले (आपान) बैठाये। किन्तु यह उपकार कुछ भी नही है। पहिले के राजाओ ने और मैंने भी विविध प्रकार के सुखो से लोगो को सुखी किया है। किन्तु मैंने यह (सुख की व्यवस्था) इसलिए की है कि लोग धर्म के अनुसार आचरण करे।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी ऐसा कहते है —मेरे धर्ममहामात्र भी उन वहुत तरह के उपकार के कार्यों में नियुक्त है जिनका सम्बन्ध सन्यासी और गृहस्थ दोनो से है। वे सव सप्रदायो में भी नियक्त है। मैंने उन्हें सघो (वौद्ध भिक्षुओ) में, व्राह्मणो मे, आजीविको में, निर्ग्रन्थो (जैन साधुओ) में तथा विविध सप्रदायो के वीच नियुक्त किया है। इस प्रकार भिन्न भिन्न महामात्र अपने-अपने कार्यों मे लगे हुए है, किन्तु धर्ममहामात्र अपने कार्य के अलावा सव सप्रदायो का निरीक्षण भी करते है।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —ये तथा अन्य प्रधान कर्मचारी मेरे तथा मेरी रानियो के दानोत्सर्ग के कार्यो के सम्बन्ध में नियुक्त है और यहाँ (पाटलिपुत्र मे) तथा प्रानो में वे मेरे सव अत पुर वालो को भिन्न भिन्न रूप से वताते है कि कौन कौन से लोग कितने दान के पात्र है। वे मेरे पुत्रो और दूसरे राजकुमारो के दानोत्सर्ग कार्य की देखभाल करने के लिए नियुक्त है, जिसमें कि धर्म की उन्नति और धर्म का आचरण हो। धर्म की उन्नति और धर्म का आचरण इमी में है कि दया, दान, सत्य, शौच (पवित्रता), मृदुता और साधुता लोगो मे वढें।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —जो कुछ अच्छा काम मैने किया है उसे लोग स्वीकार करते है और उसका अनुसरण करते है, जिससे माता-पिता की सेवा, गुरुओ की सेवा, वयोवृद्धो का सत्कार और व्राह्मणो-श्रमणो के साथ, दीन-दुखियो के साथ तथा दास-नौकरो के साथ उचित व्यवहार, ये सव गुण लोगो में वढे है और वढेंगे।

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —मनुष्यो मे जो यह धर्म की वृद्धि हुई है सो दो प्रकार से हुई है अर्थात् एक धर्म के नियम के द्वारा और दूसरे

विचार-परिवर्तन के द्वारा। इन दोनो मे से धर्म के नियम कोई वडे महत्व की वस्तु नही है, पर विचार-परिवर्तन वडे महत्व की वात है। धर्म के नियम ये है, जैसा कि मैंने आज्ञा निकाली है कि अमुक-अमुक प्राणी न मारे जाय। और भी वहुत से धर्म के नियम मैंने वनाये है। पर विचार-परिवर्तन के द्वारा मनुष्यो मे धर्म की वृद्धि हुई है, क्योकि इससे प्राणियो की अहिसा और (यज्ञो मे) जीवो का अवध (वध न किया जाना) वढा है।

यह लेख इसलिए लिखा गया है कि जव तक सूर्य और चन्द्रमा है तव तक मेरे पुत्र और प्रपौत्र (परपोते) इसके अनुसार आचरण करें। क्योकि इसके अनुसार आचरण करने से यह लोक और परलोक दोनो सुधरेंगे। राज्याभिपेक के २७ वर्ष वाद मैंने यह लेख लिखवाया है।

देवताओ के प्रिय यह कहते है --जहाँ-जहाँ पत्थर के स्तम्भ या पत्थर की शिलाए हो वहाँ-वहाँ यह धर्मलेख खुदवाये जाये, जिससे कि चिरस्थित रहे।

दिल्ली-मेरठ के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भ-लेख

. .

.

. धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार काम करना, धर्म के अनुसार सुख देना

.

दिल्ली-मेरठ का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हे —धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे, बहुत से अच्छे काम करे, दया दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है। दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर जीवो पर भी मैंने अनेक कृपा की है। मैंने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये है। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है (कि लोग इसके अनुसार) आचरण करें और यह चिर-स्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।

दिल्ली-मेरठ का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोप मुझ में है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बडी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण है और इनके कारण से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेप रूप से ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

दिल्ली-मेरठ का चतुर्थ स्तम्भलेख

... .

.. . . (रज्जुक लोग) मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करे.. ....

.. .. . .निश्चित हो जाता है . . . . .

. . . . . सुख पहुँचाने की . . .

उसी प्रकार लोगो को हित और सुख पहुँचाने के लिए मैने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये है। वे निर्भय, निश्चिन्त .. .. . काम करें। इसलिए मैने . . . . रज्जुको के अधीन कर दिया है। मै चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने मे पक्ष-पात नही हो। इसलिए (आज से) मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। . ... उनकी ओर से उनके जीवन दान के लिए (रज्जुको से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए . . .. उपवास करेंगे । . . .. कारागार मे रहने के समय भी (दण्ड पाये हुए लोग) परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, संयम और दान करने की इच्छा लोगो मे बढे ।

दिल्ली-मेरठ का पंचम स्तम्भलेख

. .. .

.. . . . . उनके बच्चो को जो ६ महीने तक के हो, न मारना चाहिए। मुर्गे को बधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियो की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिये । एक जीव मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओ की तीन

पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न वेचना चाहिए। इन सव दिनो में हाथियो के वन में तथा तालाबो मे कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष को अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या वा पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु-नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्योहारो के दिन वैल को वधिया न करना चाहिए तथा बकरा, भेडा, सूअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियो को, जो बधिया किये जाते हैं, वधिया न करना चाहिए। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष मे घोडे और वैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के वाद २६ वर्षों के अन्दर मैने २५ बार कारागार से बन्दियो को मुक्त किया है।

दिल्ली-मेरठ का षष्ठ स्तम्भलेख

अपने आप स्वय (लोगो के पास) जाना—यह मै मुख्य कर्त्तव्य मानता हूँ। राज्याभिपेक के २६ वर्प वाद मैने यह धर्म लेख लिखवाया।

लौड़िया-अरराज के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिपेक के २६ वर्प वाद मैने यह धर्म-लेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के विना, विशेप आत्म-परीक्षा के विना, वडी सेवा के विना, पाप से वडे भय के विना और महान्

उत्साह के विना इस लोक मे और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगो का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन बढा है तथा आगे और भी बढ़ेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी) चाहे वे ऊचे पद पर हो या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते है और ऐसा उपाय करते है कि चचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करते है। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनु-सार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धान्त) है।

लौड़िया-अरराज का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है :—धर्म करना, अच्छा है। पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे; बहुत से अच्छे काम करे, दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है। दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर-जीवो पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हे प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये है। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करे और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

लौड़िया-अरराज का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन मे कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैंने

किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बडी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या, यह सब पाप के कारण है और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

लौड़िया-अरराज का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। मेरे रज्जक नाम के कर्मचारी लाखो मनुष्यों के ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिसमें कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगो के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगो पर अनुग्रह करें। वे (लोगो के) सुख और दुःख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषो के द्वारा लोगो को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनो जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ सौंप-कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगो के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करे, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मै चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नही हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगो को मृत्यु का

दण्ड मिला है उनके जाति कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन दान के लिए (रज्जुको से) पुर्निचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, सयम और दान करने की इच्छा लोगो मे वढे।

लौड़िया-अरराज का पंचम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैने निम्नलिखित प्राणियो का वध करना वर्जित कर दिया है —सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड), अवाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), विना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गगापुपुटक, सकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (वारहसिंगा) सांड, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कवूतर, गाँव के कवूतर तथा सव तरह के वे चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते है और न खाये जाते है। गाभिन या दूध पिलाती हुई वकरी, भेडी या सुअरी को तथा इनके वच्चो को, जो ६ महीने तक के हो, न मारना चाहिए। मुर्गे को वधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूमी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियो की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओ की तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न वेचना चाहिए। इन सव दिनो में हाथियो के वन मे तथा तालावो में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्यौहारो के दिन वैल को वधिया न करना चाहिए तथा वकरा, भेडा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियो को, जो वधिया किये जाते है, वधिया न करना चाहिये। पुष्य और पुनर्वसु

नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष मे घोडे और बैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के वाद २६ वर्ष के अन्दर मैंने २५ वार कारागार मे वन्दियो को मुक्त किया है।

लौडिया-अराराज का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के वारह वर्ष वाद मैंने धर्मलेख लोगो के हित और सुख के लिए लिखवाये, जिसमें कि वे (पाप के मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करे। इसी प्रकार मे लोगो के हित और सुख को लक्ष्य में रखकर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति कुटुम्व के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते हैं। इसी (उद्देश्य) के अनुसार मै कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार सव समाजो के (हित और सुख को) में ध्यान में रखता हूँ। मैंने सव पाषण्डो (सम्प्रदायो) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वय (लोगो के पास) जाना—यह मै (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया।

लौडिया-नन्दनगढ़ के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के विना, विशेष आत्म-परीक्षा के विना, वडी सेवा के विना, पाप से वडे भय के विना और महान् उत्साह के विना इस लोक मेंऔर परलोक मे सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगो का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन वढा है तथा आगे और भी वढेगा

मेरे पुरुष (राजकर्मचारी) चाहे वे ऊँचे पद पर हो या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चचल-बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हो। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धान्त) है।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं — धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे, बहुत से अच्छे काम करे, दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करें। मैंने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है। दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर-जीवो पर भी मैंने अनेक कृपा की है, मैंने उन्हें प्राण-दान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैंने किये है। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।

लौड़िया-नन्दनगढ़ का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —मनुष्य अपने अच्छे ही कामो को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बडी कठिन है। तथापि

मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण हैं और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दें। इस वात की ओर विशेप ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक में सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

लौडिया-नन्दनगढ का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखों मनष्यों के ऊपर नियुक्त है। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है, जिससे कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगो के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगो पर अनुग्रह करें। वे (लोगो) के सुख और दु ख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्म-शील पुरुपो के द्वारा लोगो को ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनो जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुप" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार काम करेंगे। वे (पुरुप) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य, अपने वच्चे को निपुण धाय के हाथ सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी। उसी प्रकार लोगो के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नहीं हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है, उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगो को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके

जीवन दान के लिए (रज्जुको से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्त काल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योकि मेरी इच्छा है कि कारागार मे रहने के समय में भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, सयम और दान करने की इच्छा लोगो में बढे।

लौड़िया नन्दनगढ़ का पंचम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैंने निम्नलिखित प्राणियो का वध करना वर्जित कर दिया है —सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड), अवाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), विना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गंगापुपुटक, सकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश, (गिलहरी), स्टमर (वारहसिंगा), साँड, ओकपिण्ड, पलसत (गेंडा), श्वेत कवूतर, गाँव के कवूतर तथा सव तरह के चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग मे आते है और न खाये जाते है। गाभिन या दूध पिलाती हुई वकरी, भेडी या सुअरी को तथा इनके वच्चो को, जो ६ महीने तक के हो, न मारना चाहिए। मुर्गे को वधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणियो सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियो की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मारकर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओ की तीन पूर्ण-मासी के दिन, पौषमास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रति-पदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न वेचना चाहिए। इन सव दिनो में हाथियो के वन में तथा तालावो मे कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्यौहारो के दिन वैल को वधिया न करना चाहिए तथा वकरा, भेडा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियो को, जो वधिया किये जाते है, वधिया न करना चाहिए। पुष्य

और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोडे और वैल को न दागना चाहिए। राज्याभिषेक के वाद २६ वर्षो के अन्दर मैने २५ वार कारागार से वदियो को मुक्त किया है।

लौडिया-नन्दनगढ़ का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के बारह वर्ष वाद मैने धर्मलेख लोगो के हित और सुख के लिए लिखवाए, जिस से कि वे (पाप मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार मै लोगो के हित और सुख को लक्ष्य रख कर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति-कुटुम्व के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते है। इमी (उद्देश्य) के अनुसार मै कार्य करता हूँ। इसी प्रकार सब समाजो के (हित और सुख को) मै ध्यान में रखता हूँ। मैने सब पाषण्डो (सम्प्रदायो) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वय (लोगो के पास) जाना यह मै (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिषेक के २६ वर्ष वाद मैने यह धर्मलेख लिखवाया।

रामपुरवा के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—राज्याभिपेक के २६ वर्ष वाद मैने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के विना, विशेष आत्म-परीक्षा के विना, वडी सेवा के विना, पाप से वडे भय के विना और महान् उत्माह के विना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी

शिक्षा से (लोगो का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन वढा है तथा आगे और भी वढेगा । मेरे पुरुप (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊँचे पद पर हो या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चचल वुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हो । इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं । धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धात) है ।

रामपुरवा का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —धर्म करना अच्छा है । पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे, वहुत से अच्छे काम करे, दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे । मैने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है । दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर-जीवो पर भी मैने अनेक कृपा की है, मैने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी वहुत से कल्याण के काम मैने किये है । यह लेख मैने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह पुण्य का काम करेगा ।

रामपुरवा का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —मनुष्य अपने अच्छे ही काम को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैने यह अच्छा काम किया है ।" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैने

किया है या यह दोष मुझमें है।" इस प्रकार की आत्म-परीक्षा बडी कठिन है। तथापि मनुष्य को यह देखना चाहिए कि क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या यह सब पाप के कारण है और इनके सबब से मनुष्य अपना नाश न होने दे। इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए कि इस (मार्ग) से मुझे इस लोक मे सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक भी बनेगा।

रामपुरवा का चतुर्थ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। मेरे रज्जुक नाम के कर्मचारी लाखो मनुष्यो के ऊपर नियुक्त है। पुरस्कार तथा दण्ड देने का अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है जिससे कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य पालन करें तथा लोगो के हित और सुख का ध्यान रखें और लोगो पर अनुग्रह करें। वे (लोगो के) सुख और दु ख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे और धर्मशील पुरुषो के द्वारा लोगो को ऐमा उपदेश देंगे कि जिससे वे लोग इस लोक में और परलोक में दोनो जगह सुख प्राप्त करें। रज्जुक लोग भी मेरी आज्ञा का पालन करेंगे। मेरे "पुरुष" (नामक कर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञा के अनसार काम करेगे। वे (पुरुष) भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को निपुण धाय के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगो के हित और सुख पहुँचाने के लिए मैंने रज्जुक नामक कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तचित्त होकर काम करें, इसलिए मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार उनके अधीन कर दिया है। मै चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नही हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगो

को मृत्य का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटुम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन-दान के लिए (रज्जुको से) पुनर्विचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्तकाल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे, क्योकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, सयम और दान करने की इच्छा लोगो में वढे।

रामपुरवा का पंचम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है :—राज्याभिपेक के २६ वर्ष वाद मैने निम्नलिखित प्राणियो का वध करना वर्जित कर दिया है —सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हस, नान्दीमुख, गेलाट,, जतुका (चमगीदड), अवाकपीलिका (दीमक), दुडि (कछुवी), विना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गगापुपुटक, सकुज-मत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (वारहसिगा), सॉड़, ओकपिण्ड, पलसत (गेडा), श्वेत कवूतर, गाव के कवूतर, तथा सव तरह के वे चौपाये जो न तो किसी प्रकार के उपयोग में आते है और न खाये जाते है। गाभिन या दूव पिलाती हुई वकरी, भेडी या सुअरी को तथा इनके वच्चो को जो ६ महीने तक के हो, न मारना चाहिए। मुर्गे को वधिया न करना चाहिए। जीवित प्राणी सहित भूसी को न जलाना चाहिए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियो की हिसा करने के लिए वन में आग न लगाना चाहिए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओ की तीन पूर्णमासी के दिन, पौप मास की पूर्णमासी के दिन, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन, मछली न मारना चाहिए और न वेचना चाहिए। इन सव दिनो में हाथियो के वन में तथा तालावो में कोई भी दूसरे प्रकार के जीव न मारे जाने चाहिए। प्रत्येक पक्ष की अप्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, तीन चातुर्मासी के दिन तथा त्योहारो के दिन, वैल को वधिया न करना चाहिए तथा वकरा, भेडा, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियो को, जो वधिया किये जाते है, वधिया न करना चाहिए। पुष्य और

पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोडे और वैल को न दागना चाहिए। राज्याभिपेक के वाद २६ वर्षों के अन्दर मैंने २५ वार कारागार से बन्दियो को मुक्त किया है।

रामपुरवा का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —राज्याभिपेक के वारह वर्ष वाद मैंने धर्मलेख लोगो के हित और सुख के लिए लिखवाये, जिससे कि वे (पाप के मार्ग को) त्याग कर भिन्न भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें। इसी प्रकार मैं लोगो के हित और सुख को लक्ष में रखकर यह देखता हूँ कि न केवल मेरे जाति-कुटुम्ब के लोग वरन् दूर के लोग और पास के लोग भी किस प्रकार सुखी रह सकते है। इसी (उद्देश्य) के अनुसार मै कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार सव समाजो के (हित और सुख को) मै ध्यान में रखता हूँ। मैंने सब पापण्डो (सम्प्रदायो) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वय (लोगो के पास) जाना—यह मैं (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। राज्याभिपेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया।

एलाहावाद-कोसम के स्तम्भलेख

प्रथम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है—राज्याभिपेक के २६ वर्ष वाद मैंने यह धर्मलेख लिखवाया। अत्यन्त धर्मानुराग के विना, विशेष आत्म-परीक्षा के विना, वडी सेवा के विना, पाप से वडे भय के विना और महान् उत्साह के विना इस लोक में और परलोक में सुख दुर्लभ है। पर मेरी शिक्षा से (लोगो का) धर्म के प्रति आदर और अनुराग दिन पर दिन वढा है

तथा आगे और भी बढेगा। मेरे पुरुष (राजकर्मचारी), चाहे वे ऊँचे पद पर हो या नीचे पद पर अथवा मध्यम पद पर, (मेरी शिक्षा के अनुसार) कार्य करते है और ऐसा उपाय करते है कि चचल बुद्धि वाले (दुर्विनीत या पापी) लोग भी धर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित हो। इसी तरह अन्त-महामात्र (सीमान्त पर के राजकर्मचारी) भी आचरण करते है। धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार कार्य करना, धर्म के अनुसार सुख देना और धर्म के अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासन का सिद्धात) है।

एलाहाबाद-कोसम का द्वितीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से से दूर रहे, बहुत से अच्छे काम करे, दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे। मैने कई प्रकार से चक्षु का दान या आध्यात्मिक दृष्टि का दान भी लोगो को दिया है। दोपायो, चौपायो, पक्षियो और जलचर जीवो पर भी मैने अनेक कृपा की है, मैने उन्हें प्राणदान भी दिया है। और भी बहुत से कल्याण के काम मैने किये है। यह लेख मैने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्य का काम करेगा।

एलाहाबाद-कोसम का तृतीय स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है —मनुष्य अपने अच्छे ही कामो को देखता है (और मन में कहता है कि) "मैने यह अच्छा काम किया है।" पर वह अपने पाप को नही देखता (और मन में नही कहता कि) "यह पाप मैने किया है या यह दोष मुझमे है।" . . . .

एलाहाबाद-कोसम का चतुर्थ स्तम्भलेख

. . . .

.. . .

पुरस्कार अथवा दण्ड देने का अधिकार रज्जुको के अधीन कर दिया है। मै चाहता हूँ कि व्यवहार (न्याय के काम) में तथा दण्ड (सजा) देने में पक्षपात नही हो। इसलिए आज से मेरी यह आज्ञा है कि कारागार में पडे हुए जिन मनुष्यो को मृत्यु का दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिन की मुहलत दी जाय। (इस बीच में अर्थात् तीन दिन की मुहलत के भीतर) जिन लोगो को मृत्यु का दण्ड मिला है उनके जाति-कुटम्ब वाले उनकी ओर से उनके जीवन-दान के लिए (रज्जुको से) पुर्नविचार की प्रार्थना करेंगे या वे अन्त काल तक ध्यान करते हुए परलोक के लिए दान देंगे या उपवास करेंगे। क्योकि मेरी इच्छा है कि कारागार में रहने के समय में भी दण्ड पाये हुए लोग परलोक का चिन्तन करें और अनेक प्रकार का धर्माचरण, सयम और दान करने की इच्छा लोगो में बढे।

एलाहाबाद-कोसम का पंचम स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद मैने निम्नलिखित प्राणियो का वध करना वर्जित कर दिया है —सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर नान्दीमुख, गैलाट, जतुका (चमगीदड), अवाक-पीलिका (दीमक), दुडी (कछुवी), बिना हड्डी की मछली, वेदवेयक, गगापुपुटक, सकुज-मत्स्य, कछुआ, पर्णशश (गिलहरी), स्टमर (बारहसिंगा), साँड श्वेत कबूतर, गाँव के कबूतर तथा सब तरह के चौपाये जो न तो किसी प्रकार उपयोग में आते है और न .

.

एलाहाबाद-कोसम का षष्ठ स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ··· ···· · ·· ·· ··············
· ··· · ·· · · ·· ··· · ···· ·······
·· · · ·· · इसी प्रकार मै लोगो के हित और
सुख को लक्ष्य में रखकर यह देखता हूँ कि · ·· · ···· · ··· ·····
· ·· · · · · वरन दूर के लोग और पास के लोग भी
किस प्रकार · ·· · ·· ······ ·· · ··· ·······
· · · · · कार्य भी करता हूँ। इसी प्रकार
सब समाजो के (हित और सुख को) मै ध्यान में रखता हूँ। मैने सब पाषण्डो (सम्प्रदायो) का भी विविध प्रकार से सत्कार किया है। किन्तु अपने आप स्वय (लोगो) के पास जाना---यह मै (अपना) मुख्य (कर्त्तव्य) मानता हूँ। ········
··· · · · यह धर्मलेख लिखवाया।

एलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर रानी का लेख

देवताओ के प्रिय सर्वत्र महामात्रो को यह आज्ञा देते है —दूसरी रानी ने जो कुछ दान किया हो, चाहे वह आम्रवाटिका हो या उद्यान हो या दानशाला हो या और कोई चीज हो, वह सब उसी रानी का दान गिना जाना चाहिए। ऐसी प्रार्थना दूसरी रानी अर्थात् तीवर की माता की है।

एलाहाबाद-कोसम के स्तम्भ पर कौशाम्बी का स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय कौशाम्बी में नियुक्त महामात्रो को आज्ञा देते है कि (मैने भिक्षुओ के सघ को तथा भिक्षुणियो के सघ को) एक किया है। (जो कोई

भिक्षु, या भिक्षुणी सघ मे फूट डाले उसको) सघ में नही लेना चाहिए। भिक्षु या भिक्षुणी, जो कोई भी, सघ में फूट डालेगा उसको श्वेत वस्त्र पहनाकर उस स्थान मे हटा दिया जाएगा जहाँ भिक्षु या भिक्षुणियाँ रहती है (अर्थात् वह भिक्षु-समाज से वहिष्कृत कर दिया जाएगा)।

लघु स्तम्भलेख

(१) साची का लघु स्तम्भलेख

(यह धर्मलेख साची में नियुक्त महामात्रो को सम्बोधित करके लिखा गया है। लेख के प्रारम्भ का भाग टूटा हुआ है।)

(सघ मे) फूट नही डालनी चाहिए। भिक्षु तथा भिक्षुणी दोनो का सघ, जब तक सूर्य और चन्द्रमा है और जब तक मेरे पुत्र और परपोते राज्य करेंगे तब तक, एक रहेगा। जो कोई भिक्षुणी या भिक्ष, सघ में फूट डालेगा उमको श्वेत वस्त्र पहना कर उस स्थान में रख दिया जाएगा जो भिक्षु या भिक्षुणियो के लिये उचित नही है। क्योकि मेरी इच्छा है कि सघ एक और चिरस्थित रहे।

(२) सारनाथ का लघु स्तम्भलेख

(यह लेख सारनाथ मे नियुक्त महामात्रो को सम्बोधित कर के लिखा गया है। इसका भी प्रारम्भिक भाग टूटा हुआ है)।

देवताओ के प्रिय

पाटलिपुत्र में कोई सघ में फूट न डाले। जो कोई-चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी-सघ में फूट डालेगा उसको श्वेत वस्त्र पहना कर उस स्थान में रख दिया जाएगा जो भिक्षुओ या भिक्षुणियो के योग्य नही

है (अर्थात् वह भिक्षु-समाज से बहिष्कृत कर दिया जाएगा) इस प्रकार मेरी यह आज्ञा भिक्षु-सघ और भिक्षुणी-सघ को बता दी जाय। देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है —इस प्रकार का एक लेख आप लोगो के पास आपके कार्यालय में रहे और ऐसा ही एक लेख आप लोग उपासको के पास रख दें। उपासक लोग हर उपवास के दिन इस आज्ञा पर अपना विश्वास दृढ करने के लिए आवें। निश्चित रूप से हर उपवास के दिन प्रत्येक महामात्र इस आज्ञा पर अपना विश्वास जमाने तथा इसका प्रचार करने के लिए उपवासव्रत मे सम्मिलित होवे। जहाँ जहाँ आप लोगो का अधिकार हो वहाँ वहाँ, आप सर्वत्र इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करे। इसी प्रकार आप लोग सब कोटो (गढो) और विषयो (प्रान्तो) में भी अधिकारियो को इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करने के लिए भेजें।

(३) रुम्मिनदेई का लघु स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के २० वर्ष बाद स्वय आकर इस स्थान की पूजा की, क्योकि यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। यहाँ पत्थर की एक प्राचीर (दीवार) बनवायी गयी और पत्थर का एक स्तम्भ खडा किया गया। बुद्ध भगवान् यहाँ जन्मे थे इसलिए लुम्बिनी ग्राम को कर से मुक्त कर दिया गया और (पैदावार का) आठवा भाग भी (जो राजा का हक था) उसी ग्राम को दे दिया गया।[१]

---

१ कुछ विद्वान् इस अन्तिम वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते है —"पैदावार का जो भी भाग कर के रूप में लिया जाता रहा हो, परन्तु इस ग्राम से पैदावार का केवल आठवा भाग ही लिया जाने लगा।"

(४) निग्लीव का लघु स्तम्भलेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के चौदह वर्ष वाद कनक-मुनि वुद्ध के स्तूप की लम्बाई बढा कर दुगुनी कर दी और राज्याभिषेक के बीस वर्ष वाद स्वय आकर (इस स्तूप की) पूजा की और (एक शिला-स्तम्भ) खडा किया।

लघु शिलालेख

(यह धर्मलेख अशोक के राजकर्मचारियो को सम्बोधन करके लिखवाया गया है। यही धर्मलेख सहसराम, गुजर्रा, गवीमठ, मास्की, वैराट, ब्रह्मगिरि, येर्रागुडी, जटिंग रामेश्वर, पाल्कीगुण्डी, राजुल-मन्दगिरि, तथा सिद्धपुर में भी पाया जाता है। ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, येर्रागुडी, जटिंग रामेश्वर तथा राजुल मन्दगिरि में एक और लेख भी इसके साथ जुडा हुआ मिलता है जिसे द्वितीय लघु शिलालेख कहते हैं।)

(१) रूपनाथ का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते हैं —अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं प्रगट रूप से शाक्य (वौद्ध) हुआ। परन्तु अधिक उद्योग नही किया, किन्तु एक वर्ष से अधिक हुए जब से मैं सघ मे आया हू तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवता अब तक मनष्यो के साथ नही मिलते जुलते थे अब वे मेरे द्वारा (मनुष्यो से) मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है यह (उद्योग का फल) केवल वडे ही लोग पा सकें (ऐसी बात नही है), क्योकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो वडे भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते हैं। यह अनुशासन

इसलिए लिखा गया कि छोटे और बड़े उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जाने और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विषय का विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, (कम से कम) डेढ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन अवसर के अनसार पर्वतो की शिलाओ पर लिखा जाना चाहिए। यहा राज्य में जहाँ कही शिला-स्तम्भ हो वहाँ शिला-स्तम्भ पर भी लिखा जाना चाहिए। इस अनुशासन के अनुसार जहाँ तक आप लोगो का अधिकार हो वहाँ तक आप लोग सर्वत्र (अधिकारियो को) भेज कर (इस का प्रचार करें।) यह अनशासन (मैने) उस समय लिखाया जब मै प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

(२) सहसराम् का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा (कहते) है — ·वर्ष से अधिक हुए कि मै उपासक हुआ। परन्तु अधिक उद्योग नही किया, किन्तु एक वर्ष से अधिक हुए जब से ··· · · · ·· इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) मे जो देवता अब तक मनुष्यो के साथ नही मिलते जुलते थे, अब वे मेरे द्वारा (मनुष्यो से) मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है। (यह उद्योग का फल) केवल बडे ही लोग पा सकें (ऐसी बात नही है) क्योकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्ग का सुख पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बडे उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थित रहे। इस विषय का विस्तार होगा, और बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन मैने उस समय लिखवाया जब मै प्रवास मे था और प्रवास की २५६ रात्रि बीत चुकी थी। इस अनुशासन को शिलाओ पर लिखवाओ और जहाँ कही यहाँ (मेरे राज्य में) शिला-स्तम्भ हो वहाँ यह अनुशासन शिला-स्तम्भ पर भी खुदवाओ।

(३) गुजर्रा का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी अशोक राजा का (यह अनुशासन है) —अढाई वर्ष से मैं उपासक हूँ। परन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मै सघ में आया हूँ तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में देवताओ के प्रिय के (उद्योग से) जो देवता अब तक मनुष्यो के साथ नही मिलते जुलते थे अब वे (मनुष्यो से) मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बडे ही लोग पा सके (ऐसी बात नही है), क्योकि छोटे लोग भी उद्योग करें, धर्म के अनुसार आचरण करे तथा प्राणियो के साथ सयम (अहिंसा) का व्यवहार करें, तो बडे भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बडे धर्म का आचरण करे और उद्योग करें। सीमान्त मे रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और धर्म का आचरण चिरस्थायी रहे। (यह धर्म का आचरण चिरस्थायी रहेगा) यदि इसका पालन आप लोग करें। यह अनुशासन (मैंने) उस समय लिखाया जब मैं प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

(४) गवीमठ का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय कहते है —अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ। परन्तु अधिक उद्योग नही किया। किन्तु एक वर्ष से अधिक हुए जब से मै सघ में आया हूँ तब से मैंने पूरी तरह से उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) मे जो देवता अब तक मनुष्यो के साथ नही मिलते जुलते थे, अब वे (मनुष्यो से) मिल जुल गये हैं। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल बडे ही लोग पा सकें (ऐसी बात नही है)। छोटे लोग भी उद्योग करे तो बडे भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए (लिखा गया) कि छोटे और बडे उद्योग करें। सीमान्त मे रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और (मेरा) यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विषय का विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ गुना विस्तार होगा।

(५) मास्की का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय अशोक की ओर से ऐसा कहना :—अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मै शाक्य (बौद्ध) हुआ। (एक वर्ष से) अधिक (हुए जब से) मै सघ मे आया हूँ (और पूरी तरह से उद्योग किया है) जम्बूद्वीप (भारत) मे जो देवता पहले मनुष्यो के साथ नहीं मिलते जुलते थे, वे अब (मनुष्यो) से मिल जुल गये हैं। छोटे लोग भी यदि धर्म का पालन करें तो इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते है। यह न समझना चाहिए कि केवल वडे लोग ही यह कर सकते है। छोटे लोग और वडे लोग सबो से यह कहना चाहिए कि यदि आप इस प्रकार करेंगे तो यह कल्याण-कारी होगा और चिरस्थायी रहेगा तथा इसका विस्तार होगा, कम से कम डेढ़ गुना विस्तार होगा।

(६) वैराट का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय कहते है —(अढाई वर्ष से अधिक हुए कि) मै उपासक हुआ। परन्तु अधिक . . . .
सघ में आया हूँ तव से मैंने अच्छी तरह . . . . . जम्बूद्वीप (भारत) में जो देवताओ से न मिलते जुलते थे . . . . यह उद्योग का फल है। केवल वड़े ही लोग पा सके . . . .
. . . . . महान् स्वर्ग का सुख पा सकते है। . . . . . .
. . छोटे और वडे उद्योग करे . . . . . .
सीमान्त मे रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थित रहे . . . . विस्तार होगा . . . .
. डेढ गुना विस्तार होगा।

(७) पाल्कीगुण्डू का लघु शिलालेख

मनुष्यो के साथ

यह (केवल वडे ही लोग पा सके ऐसी वात नही है)

उद्योग करें तो वडे भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते है

उद्योग करें। सीमान्त के लोग भी जानें विस्तार होगा, डेढ गुना विस्तार होगा

(८) ब्रह्मगिरि का लघु शिलालेख

सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्रो की ओर से इसिला के महामात्रो को आरोग्य (की शुभकामना) कहना और यह सूचित करना कि देवताओ के प्रिय आज्ञा देते है कि अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मै उपासक हुआ। परन्तु एक वर्ष मैने अधिक उद्योग नही किया। पर एक वर्ष से अधिक हुए जव से मै सघ में आया हूँ, तव से मैने खूव उद्योग किया है। इस वीच जम्वूद्वीप (भारत) में जो देवता अव तक मनुष्यो के साथ नही मिलते जुलते थे वे अव (मनुष्यो से) मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है। यह (उद्योग का फल) केवल वडे ही लोग प्राप्त कर सकते है ऐसी वात नही है, क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्ग के सुख को पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया है कि छोटे और वडे (इस उद्देश्य के लिए) उद्योग करें। सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इस विपय का विस्तार होगा और वहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन मैने उस समय प्रचारित

किया जब मै प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन) हो चुके थे।

और भी देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है —माता पिता की सेवा करनी चाहिये, इसी प्रकार गुरुओ की भी सेवा करनी चाहिए, प्राणियो के प्रति दया दृढता के साथ दिखानी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए धर्म के इन गुणो को आचरण में लाना चाहिए। इसी प्रकार शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए और अपने जाति भाइयो के प्रति उचित वर्ताव करना चाहिए। यही प्राचीन (धर्म की) रीति है। इससे आयु बढती है। इसी के अनुसार (मनुष्य को) चलना चाहिये। चपड नामक लिपिकार (लेखक) ने यह लिखा।

(९) सिद्धपुर का लघु शिलालेख

सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्रो की ओर से इसिला के महामात्रो को आरोग्य (की शुभकामना) कहना और यह सूचित करना कि देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है —अढाई वर्ष से अधिक हुए कि मै उपासक हुआ। परन्तु एक वर्ष मैने अधिक उद्योग नही किया। पर एक वर्ष से अधिक हुए जब से मै सघ में आया हूँ तब से मैने अच्छी तरह उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीप (भारत) में (मनुष्यो से) मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है। यह (केवल बडे ही लोग) पा सके (ऐसी बात नही है), क्योकि छोटे लोग भी तो महान् स्वर्ग का सुख पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया कि छोटे और बडे उद्योग करें। सीमान्त और मेरा यह उद्योग चिरस्थायी रहे। . .

. विस्तार होगा और बहुत विस्तार होगा, (कम से कम) डेढ गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन (मैने उस समय लिखवाया जब मै प्रवास मे था और) प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)। माता पिता की सेवा करनी चाहिए . . .

. सत्य बोलना चाहिए . , धर्म के इन गुणो को . . .

. . इसी प्रकार शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए . . . . .

. . . . यही प्राचीन (धर्म की) रीति है। इससे आयु बढती है। . . . . .

(१०) जटिंग-रामेश्वर का लघु शिलालेख

और प्रवास के २५६ दिन हो चुके थे। इसी प्रकार माता पिता की सेवा करनी चाहिए प्राणियो के प्रति दया दिखानी चाहिए

शिष्य को आचार्य का आदर करना चाहिए। यही प्राचीन (धर्म) की रीति है। इससे आयु बढती है।

चपड नामक लिपिकार (लेखक) ने यह लिखा।

(११) येर्रागुडी का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है -(अढाई वर्ष से अधिक हुए जब मै बौद्ध हुआ, किन्तु अधिक उद्योग नही किया), परन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ जब से मै सघ में आया हूँ (तब से मैंने पूरी तरह उद्योग किया है। (इस बीच जो मनुष्य अब तक) देवताओ के साथ नही मिलते जुलते थे, वे अब मेरे द्वारा देवताओ के साथ मिल जुल गये है। यह उद्योग का फल है। (यह उद्योग का फल केवल बडे ही लोग पा सके ऐसी बात नही है, क्योकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो) बडे भारी स्वर्ग (के सुख) को पा सकते है। यह अनुशासन इसलिए लिखा गया है कि छोटे और बडे (धनी) भी इस उद्योग को करे। (सीमान्त में रहने वाले लोग भी इस अनुशासन को जाने और इसके अनुसार आचरण करें) जिसमें कि यह उद्योग चिरस्थायी रहे। इसका बहुत विस्तार होगा, कम से कम डेढ गुना विस्तार होगा

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते हैं -राजा की आज्ञा के अनुसार आपको चलना चाहिए। आप लोग 'रज्जुक' नामक कर्मचारियो को आदेश देंगे और रज्जुक

लोग ग्रामवासियो तथा 'राष्ट्रिक' नामक कर्मचारियो को आदेश देंगे कि "माता पिता की सेवा करनी चाहिए, प्राणियो पर दया करनी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, धर्म के इन गुणो का उपदेश देना चाहिए।" इसी प्रकार आप लोग देवताओ के प्रिय के कहने के अनुसार गजवाहको, लेखको, अश्ववाहको और ब्राह्मणो के आचार्यों को आज्ञा देवें कि वे अपने अपने शिष्यो को प्राचीन रीति के अनुसार शिक्षा देवें। इस आदेश का पालन होना चाहिए। आचार्य की प्रतिष्ठा इसी में है। इसी प्रकार के आचरण की परिपाटी आचार्य के कुटम्ब के पुरुष व्यक्तियो द्वारा स्त्री व्यक्तियो मे भी स्थापित करनी चाहिए। आचार्य को शिष्यो के प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि पुरानी रीति है। इसी प्रकार आप लोग अपने शिष्यो को उपदेश दे जिससे कि इस धर्म के सिद्धान्त की उन्नति और वृद्धि हो। यह देवताओ के प्रिय का आदेश है।

(१२) राजुल-मन्दगिरि का लघु शिलालेख

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है — अधिक (हुए)
. अधिक उद्योग नही किया .. . ।
एक वर्ष से अधिक हुए पूरी तरह उद्योग किया है।
इस बीच . यह उद्योग का फल है। यह उद्योग का फल
केवल बडे ही लोग पा सके छोटे लोग भी . .
. बडे भारी स्वर्ग
यह अनुशासन इसलिए लिखा गया . सीमान्त में रहने वाले लोग भी
इस अनुशासन को जानें और (मेरा) यह उद्योग चिरस्थायी रहे। .
यह अनुशासन (मैंने) उस समय लिखाया जब मैं प्रवास में था और प्रवास के २५६ (दिन हो चुके थे)।

देवताओ के प्रिय ऐसा कहते है —जैसे . .
रज्जुको को आज्ञा देनी चाहिए . . . . . .
आज्ञा देंगे . . देवताओ के प्रिय के वचन

के अनुसार आज्ञा देना . .
प्राचीन धर्म की रीति . जाति भाइयो के प्रति उचित
वर्ताव करना चाहिए

. . .. .

. . .

(१३) कलकत्ता-वैराट का लघु शिलालेख

मगध के राजा प्रियदर्शी सघ को अभिवादन-पूर्वक कहते हैं (और आशा करते हैं) कि वे विघ्न-रहित और सुख-पूर्वक होगे। हे भदन्तगण, आपको विदित है कि बुद्ध, धर्म और सघ में हमारी कितनी भक्ति और श्रद्धा है। हे भदन्तगण, जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सो सब अच्छा कहा है। पर भदन्तगण, जिसको म समझता हूँ कि इससे सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा उसको (अर्थात् अवश्य पढे जाने योग्य धर्म-ग्रथो के नामो को) यहाँ पर लिखता हूँ यथा —विनय समुकस (विनय-समुत्कर्ष) अर्थात् विनय का महत्त्व, अलियवसाणि (आर्य-वश) अर्थात् आर्य जीवन, अनागतभयानि (अनागत-भय) अर्थात् आने वाला भय, मुनिगाथा अर्थात् मुनियो का गान, मौनेयसूते (मौनेय-सूत्र) अर्थात् मुनियो के सवन्ध में उपदेश, उपतिसपसिने (उपतिष्य प्रश्न) अर्थात् उपतिष्य का प्रश्न, लाघुलोवादे (राहुलवाद) अर्थात् राहुल को उपदेश, जिसे भगवान् बुद्ध ने झूठ बोलने के बारे में कहा है। इन धर्मग्रन्थो को,[1] हे भदन्तगण, मै चाहता हूँ कि वहुत से भिक्षु और भिक्षुणियाँ वार-वार श्रवण करें और मन में धारण करें। इसी प्रकार उपासक तया उपासिकाए भी (सुनें और धारण करें), हे भदन्तगण, मै इसलिए यह (लेख) लिखवाता हूँ कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।

---

१. ये धर्मग्रन्थ कौन है, इसके बारे में विद्वानों में मतभेद है।

वरावर की पहाड़ी पर गुफालेख

प्रथम गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष वाद यह न्यग्रोध गुफा आजी-विको को दी।

द्वितीय गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १२ वर्ष वाद स्खलतिक पर्वत पर यह गुफा आजीविको को दी।

तृतीय गुफालेख

राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के १९ वर्ष वाद सुन्दर स्खलतिक पर्वत पर यह गुफा वर्षाकाल में (वाढ के पानी से वचाव के लिए) आजीविको को दी।

परिशिष्ट–(क)

अशोक के धर्मलेखो में आए हुए कुछ शब्दों की अर्थ-सहित सूची

अ

अनागत भयानि	एक बौद्ध ग्रन्थ का सस्कृत नाम जिसके बारे में अशोक ने अपने एक धर्मलेख मे कहा है कि यह भिक्षु, भिक्षुणी तथा उपासक सब को पढना चाहिए ।
अन्तिकिनि	मेसिडोनिया का यूनानी राजा एन्टिगोनस गोनेटस (२७७-२३९ ई० पू०), जो अशोक का समकालीन था ।
अन्तियोक	पश्चिमी एशिया का यूनानी राजा एन्टिओकस थिअस द्वितीय, जो अशोक का समकालीन था ।
अलिकसुन्दर	इपाइरस का यूनानी राजा (२७२-२५५ ई० पू०) या कोरिन्थ का यूनानी राजा (२५२–२४४ ई० पू०) एलेक्ज़ेण्डर, जो अशोक का समकालीन था ।

आ

आजीविक	प्राचीन भारत का एक धार्मिक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय के लोग बुद्ध के समकालीन गोशाल नामक एक धार्मिक नेता के अनुयायी थे ।
आन्ध्र	वे लोग जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण भारत के उत्तरी भाग में रहते थे ।

एक बौद्ध ग्रन्थ का सस्कृत नाम जिसको अशोक ने भिक्षु, भिक्षुणी तथा उपासक सवो को पढने के लिए कहा है।

उ

मध्य-भारत में पश्चिमी मालवा का एक नगर जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं। यह अशोक के साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेश की राजधानी या प्रधान केन्द्र था।

क

एक पूर्वकालीन बुद्ध, जो गौतमबुद्ध से पहले हुए थे।

वे लोग जो मौर्य-काल में बगाल की खाडी के किनारे रहते थे, कलिंग कहलाते थे। उनके प्रान्त का नाम भी कलिंग ही था। इसकी राजधानी तोसली थी, जो वर्तमान में उडीसा के पुरी जिले में धौली नामक स्थान पर स्थित थी।

पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के विस्तृत क्षेत्र मे बसे हुए लोग काम्बोज कहलाते थे।

अशोक की दूसरी रानी तथा राजकुमार तीवर की माता।

दक्षिण भारत में मलयालम-भाषा-भाषी केरल प्रदेश के राजा का नाम केरलपुत्र था। यह प्रदेश अशोक के साम्राज्य के बहिर्गत था।

कौशाम्बी .	एक प्राचीन नगरी (वर्तमान उत्तर प्रदेश के इलाहावाद जिले में कोसम ग्राम) ।
क्रोश	लगभग सवा दो मील की दूरी को एक क्रोश या कोस कहते थे ।

ग

गन्धार	पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी-पेशावर के प्रान्त में रहने वाले लोग गन्धार कहलाते थे । यह प्रान्त अशोक साम्राज्य के अन्तर्गत था ।

च

चोड	चोड लोग मद्रास राज्य के तजवूर-तिरुचिरपल्ली प्रान्त में रहते थे । चोड लोगो का प्रदेश अशोक साम्राज्य के वाहर था । चोड को चोल भी कहते हैं ।

ज

जम्बूद्वीप	पृथ्वी, या पृथ्वी का वह भाग जिसमें भारतवर्ष सम्मिलित था । प्राचीन भारतीय परिपाटी के अनुसार अशोक का साम्राज्य जम्बूद्वीप या पृथ्वी-मण्डल नाम से कहा गया है ।

त

तक्षशिला . . .	पश्चिमी पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में एक प्राचीन नगर। यह अशोक के साम्राज्य केर पिचमोत्तर

प्रान्त का प्रधान केन्द्र था। (वर्तमान टैक्सिला)

ताम्रपर्णी	लंका का प्राचीन नाम।
तिष्य	एक नक्षत्र का नाम। इसको पुष्य नक्षत्र भी कहते है। पौष मास में यह नक्षत्र पडता है, इससे पौष मास को भी तिष्य कहते है। अशोक कदाचित् इसी नक्षत्र में पैदा हुआ था। अतएव सभवत इसी कारण वह इसको मगलमय या पवित्र समझता था।
तीवर	अशोक की दूसरी रानी से उत्पन्न राजकुमार।
तुरमाय या तुलमाय	ईजिप्ट या मिस्र का यूनानी राजा टालेमी द्वितीय फिलाडेल्फस (२८५-२४७ ई० पू०)। वह अशोक का समकालीन था।
तोसली	अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत कलिंग प्रदेश की राजधानी। यह नगर उडीसा के पुरी जिले मे वर्तमान धौली के स्थान पर वसा हुआ था।

ध

धर्म-महामात्र	अशोक के वे उच्च अधिकारी जो अशोक द्वारा प्रचारित धर्म-सम्बन्धी मामलो और कार्यों की देखभाल करते थे।

न

नाभक	नाभक लोग कौन थे यह पता नही चला। ये लोग अशोक के साम्राज्य में रहते थे।

कौशाम्बी — एक प्राचीन नगरी (
जिले में कोसम गा

क्रोश — लगभग सवा दो मी
कहते थे।

ग

गन्धार — पश्चिमी पाकिस्तान के
में रहने वाले लोग ग
अशोक साम्राज्य के अ

च

चोड — चोड लोग मद्रास
प्रान्त में रहते थे।
साम्राज्य के बाहर था

ज

जम्बूद्वीप .. — पृथ्वी, या पृथ्वी
सम्मिलित था।
सार अशोक का
नाम से कहा

त

तक्षशिला . — पश्चिमी
प्राचीन

भ

भोज.............. .. वे लोग जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण में बरार प्रान्त में तथा उससे लगे हुए पश्चिमी भारत के कुछ भाग में रहते थे, भोज कहलाते थे।

म

मका, मगा... ....उत्तरी अफ्रीका में साइरीनी का राजा (२८२-२५८ ई० पू०), जो अशोक का समकालीन था।

मगध.... ..... दक्षिणी बिहार के वर्तमान पटना तथा गया जिले को मिला कर मगध राज्य बना था।

महामात्र........ अशोक के कुछ उच्च अधिकारी या कर्मचारी महामात्र कहलाते थे। महामात्र कई प्रकार के थे। उनमें मे एक प्रकार के महामात्र धर्म-महामात्र कहलाते थे।

य

यवन .... .. सर्व प्रथम यवन शब्द भारतीयो के द्वारा ग्रीक या यूनानी लोगो के लिए व्यवहार में आया था। धर्मलेखो में यवन लोग अशोक-साम्राज्य के अन्तर्गत सम्भवत अफगानिस्तान में बसे हुए लिखे गये है। अशोक के धर्मलेखो मे पश्चिमी एशिया के अधिपति अन्तियोक या एन्टिओकम् द्वितीय थीअस का उल्लेख यवनो के राजा के रूप में आया है।

युक्त ..... .युक्त अशोक के राज्य में एक प्रकार के राजकर्मचारी

निर्ग्रन्थ — एक धार्मिक सम्प्रदाय जो वर्धमान के सिद्धान्तों को मानता था। वधमान को महावीर, जिन तथा निर्ग्रन्थ भी कहते हैं और निग्रन्थो को जैन के नाम से भी पुकारते हैं।

न्यग्रोध . . .. . विहार के गया जिले में स्थित बराबर पहाड़ी में एक गुफा का नाम। यह गुफा अशोक ने "आजीविक" नामक भिक्षुओ के लिए बनवायी थी।

प

पाटलिपुत्र — विहार में वर्तमान पटना के निकट प्राचीन नगर का नाम पाटलिपुत्र था। यह अशोक के साम्राज्य की राजधानी थी।

पाण्ड्य . . . पाण्ड्य लोग मद्रास राज्य के वर्तमान मदुरे-रामनाथ-पुरम्-तिरुनेल्वेली भाग में रहते थे। उनका प्रदेश अशोक साम्राज्य के वहिर्गत था।

पैत्र्यणिक .. पैत्र्यणिक, लोग कौन थे यह पता नही चला है। ये लोग साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

पौलिन्द या पुलिन्द — विंध्य पर्वत के प्रान्त में रहने वाली एक जाति।

प्रादेशिक . अशोक का एक अधिकारी-वर्ग "प्रादेशिक" कहलाता था। "प्रादेशिक" के अधिकार में कदाचित् कुछ जिले रहते थे।

प्रियदर्शी . ..अशोक का एक नाम।

भ

भोज............... वे लोग जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण में वरार प्रान्त में तथा उससे लगे हुए पश्चिमी भारत के कुछ भाग में रहते थे, भोज कहलाते थे।

म

मका, मगा ....उत्तरी अफ्रीका में साइरीनी का राजा (२८२-२५८ ई० पू०), जो अशोक का समकालीन था।

मगध.... .... दक्षिणी विहार के वर्तमान पटना तथा गया जिले को मिला कर मगध राज्य वना था।

महामात्र. ... ... अशोक के कुछ उच्च अधिकारी या कर्मचारी महामात्र कहलाते थे। महामात्र कई प्रकार के थे। उनमें मे एक प्रकार के महामात्र धर्म-महामात्र कहलाते थे।

य

यवन. .... . . सर्व प्रथम यवन शब्द भारतीयो के द्वारा ग्रीक या यूनानी लोगो के लिए व्यवहार में आया था। धर्मलेखो मे यवन लोग अशोक-साम्राज्य के अन्तर्गत सम्भवत. अफगानिस्तान में वसे हुए लिखे गये हैं। अशोक के धर्मलेखो में पश्चिमी एशिया के अधिपति अन्तियोक या एन्टिओकस् द्वितीय थीअस का उल्लेख यवनो के राजा के रूप में आया है।

युक्त. ... . .युक्त अशोक के राज्य में एक प्रकार के राजकर्मचारी

	या अफसर थे। वे लोग कदाचित् जिले के एक भाग या तहसील के ऊपर नियुक्त थे।
योजन	एक योजन की दूरी लगभग नौ मील के बराबर मानी गयी है।

र

रज्जुक	अशोक के एक अधिकारी-वर्ग का नाम। रज्जुक लोग कदाचित् एक एक जिले के ऊपर रहते थे।
राष्ट्रिक	अशोक के एक अधिकारी-वर्ग का नाम। राष्ट्रिक लोग कदाचित् जिले के कुछ भाग के ऊपर रखे जाते थे।

ल

लुम्बिनी	एक ग्राम का नाम, जहाँ बुद्ध भगवान् पैदा हुए थे। आज कल रुम्मिनदेई ग्राम इसी के स्थान पर बसा हुआ है।

श

शाक्य	एक वंश का नाम था। बुद्ध भगवान् इसी वंश में पैदा हुए थे। इसी से वह "शाक्य मुनि" कहलाते थे। लिच्छवियो और मौर्यों के समान शाक्य लोग भी हिमालय के एक प्रान्त में रहते थे और भारतीय तथा मंगोलियन की मिलीजुली जाति के थे।
श्रमण	बौद्ध भिक्षु को श्रमण भी कहते हैं।

स

सत्यपुत्र या सातियपुत्र	दक्षिण भारत में मलयालम्-भाषा-भाषी प्रान्त के समीप एक भाग को सातिय कहते हैं। वहाँ राज्य करने वाले राजा की पदवी सातियपुत्र थी।
समापा	कलिंग प्रदेश का एक प्राचीन नगर। यह नगर उडीसा के गजाम जिले में जौगढ़ नाम की पहाडी के पास बसा हुआ था।
संघ	बौद्ध धर्म के भिक्षुओं के समूह को संघ के नाम से कहा जाता है।
खलतिक	बिहार के गया जिले में वर्तमान बराबर पहाडी का नाम खलतिक पर्वत था।
स्तूप	बौद्ध धर्म के किसी महान् पुरुष के अवशेष पर बना हुआ निर्माण या ढांचा स्तूप कहलाता है।

परिशिष्ट–(ख)

अशोक के धर्मलेखो के विशेष अध्ययन की सामग्री

यदि कोई पाठक अशोक के धर्मलेखो का विशेष तथा समालोचनात्मक अध्ययन करना चाहें तो उन्हें निम्नलिखित पुस्तको तथा लेखो से पर्याप्त सहायता मिलेगी –

१ बी० एम० बरूआ– "इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक" तथा "अशोक एन्ड हिज इन्स्क्रिप्शन्स"

२ डी० आर० भण्डारकर–"अशोक" (द्वितीय सस्करण)

३ एन० पी० चक्रवर्ती– "एन्शियन्ट इन्डिया" नम्बर ४ में पृष्ठ १५ से पृष्ठ २५ तक अशोक के लघु शिलालेखो के सम्बन्ध में।

४ ई० हुल्श– "इन्स्क्रिप्शन्स आफ अशोक" (कोर्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् भाग १)

५ एस० एन० मित्र– "इन्डियन कल्चर" भाग १५ में पृष्ठ ७८ से पृष्ठ ८१ तक तृतीय गुफालेख के सम्बन्ध में।

६ आर० के० मुकर्जी– "अशोक" (द्वितीय सस्करण)।

७ डी० आर० साहनी– "एनअल रिपोर्ट आफ दी आर्किओलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया" १९२८-२९ पृष्ठ १६१-६७ (येर्रागुडी के शिलालेखों के सम्बन्ध में)

८. डी० सी० सरकार– (१) "सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स वेयरिंग आन इन्डियन हिस्ट्री एन्ड सिविलिजेशन" १९४३ (२) "मास्की इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (हैदरावाद आर्किओलोजिकल सीरीज न० १) (३) "गुजर्रा इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (४) "राजुल-मन्दगिरि इन्स्क्रिप्शन आफ अशोक" (एपिग्रेफिया इन्डिका भाग ३१)।

९. आर० एल० टर्नर– "हैदरावाद आर्किओलोजिक सीरीज" न० १० में गवीमठ तथा पाल्कीगुण्डू के लघु शिलालेख के सम्बन्ध में।

१० जूल्स व्लाक– "ले इन्स्क्रिप्शन्स द अशोक" १९५० (फ्रेंच भाषा में)

११. जनार्दन भट्ट– "अशोक के धर्म लेख" (ज्ञानमण्डल काशी)

१२. वी० ए० स्मिथ– "अशोक" (तृतीय संस्करण)

१३. भण्डारकर और मजुमदार– "इन्स्क्रिप्शन्स आफ अशोक" (दो भाग)

१४. रामावतार शर्मा "प्रियदर्शि-प्रशस्तय."

१५. चारुचन्द्र वसु– "अशोक अनुशासन" (वंगला भाषा में)